

	<p>म है पूर्णो परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।</p> <p>० सागवत-पत्रिका</p> <p>अहेतुक्यप्रतिहता व्यालमासुब्रसीदति ॥</p>	
वृत्तिकृष्ण कल्पना विनायक पुस्तकालय भारत		वृत्तिकृष्ण कल्पना विनायक पुस्तकालय भारत
वर्ष ४	गोराक्ष ४७२, मास—माघ १६, वार—कारणोदशायी गुरुवार, २६ माघ, सम्वत् २०१५, १२ फरवरी १९५६	संख्या ६

स्वप्नविलासामृताष्टकम्

[श्रील-विश्वनाथ-चक्रवर्ति-ठक्कुर-विरचितम्]

प्रिय ! स्वप्ने इष्टा सरिदिनसुतेवाच्र पुलिनं यथा बृन्दारस्ये नटनपटवस्तव वहवः ।
 सुदंगाद्य वाद्य विविधगिह कश्चिद्विद्वत्तमणिः स विद्युद्गीराज्ञः लिपति जगर्ती प्रेमजगत्यौ ॥१॥
 कदाचित् कृष्णेति प्रलपति हृदन कर्दिचिद्दस्यौ क राखे ! हा हेति इवसिति पतति प्रोक्षकति एतिम् ।
 नटस्युल्लासेन क्वचिद्विग्य गायैः स्वैः प्रणविभिस्तुणादि ब्रह्मान्ते जगदतितरां रोदयति सः ॥२॥
 उतो बुद्धिर्भ्रान्ता भम समजनि प्रेष्य किमहो ! भवेत् सोऽयं कान्तः किमयमहमेवाहिम न परः ।
 अद्वेत् वव प्रेयाम्भम स किल चेत् क्वाहमिति से अमो भूयो भूयानभवदय निद्रां गतवती ॥३॥
 प्रिये ! इष्टा तास्ताः कुतुकिनि ! मया दर्शितचरो रमेशाया मुक्तोनै खलु भवती विस्मयमगात् ।
 कथं विप्रो विस्मापयितुमशक्त त्वां तत्र कथं तथा आनन्द भत्ते स हि भवति को हन्त ! किमिदम् ॥४॥
 इति प्रोच्य प्रेष्ठां चाणमय परामृष्य रमणो हसक्षाकुतज्ज्ञ व्यनुददथ तं कौस्तुभमणिभ् ।
 ♦ तथा दीप्ते लेने सपदि स यथा इष्टमिव तद्वितासानां लक्ष्मं स्थिर चरणैः सर्वमभवत् ॥५॥

विभाद्याथ प्रोचे प्रियतम ! मया जातमस्तिं तवाकृतं वस्त्वं स्मितमसुनुयास्तस्वमसि सः ।
 स्फुटं यज्ञावादीर्यदभिमतिरत्राप्यहमिति स्फुरन्ती मे तस्मादहमपि स प्रवेत्यनुमिमे ॥६॥
 यदप्यहमतीन् रसिपदमिदं कौस्तुमस्या प्रदीप्यात्रैवादीदशदखिलकीवानपि भवान् ।
 स्वशक्त्याविभूय स्वमस्तिलविलासं प्रतिजनं चिराय प्रेमादत्तै तुनरपि तदापास्यसि जगत् ॥७॥
 यदुवतं गर्वेण वज्रपतिसमवृ श्रुतिविद् । भवेत् रितो वर्णः वदविदपि भवेत्तद् हि सृष्टा ।
 अतः स्वप्नः सत्यो मम च न तदा आनन्दस्वभवस्त्वमेवासौ साक्षादिह यदनुभूतोऽसि तदत्म ॥८॥
 पित्रेद् यस्य स्वप्नामृतामदमहो ! चित्तमधुपः सप्तन्देह स्वप्नारवितमिह जागर्ति सुमतिः ।
 अवासरचैतन्यं प्रणय जलाधौ खेलति यतो भृशं भत्ते तदिमञ्चतुलकरणां कुञ्जतृपतिः ॥९॥

तु वाद :—

एक दिन जब कि रात चीत गयी थी, श्रीमती राधिकाजीने श्रीकृष्णसे कहा—प्रियतम ! आज मैंने एक स्वप्न देखा है। क्या देखती हूँ कि किसी जगह यमुनाकी तरह एक नदी है, अर्थात् जिस प्रकार यह यमुना बृन्दावनको चारों ओरसे घेरे हुई है, उसी प्रकार वह नदी भी उस स्थानको चारों ओरसे घेरे हुई है। इस बृन्दावनमें जैसे पुलिन (पानीके भीतरसे हालकी निकली हुई जमीन) हैं, ठीक उसी प्रकारके पुलिन वहाँ पर भी हैं; इस बृन्दावनमें जैसे अधिकांश लोग नृत्य-कलामें पारदर्शी हैं, वहाँ भी यही बात देखी। यहाँ जैसे मृदंग आदि वाद्ययंत्र हैं, वहाँ भी ठीक इसी प्रकारके वाद्ययंत्र थे। यहाँ पर जैसे तुम और मैं हूँ, वहाँ पर भी इसी प्रकार एक द्विज (ब्राह्मण-वर) को देखा। ऐसा जान पड़ता था कि विजलीकी तरह गौर-कान्तिसे युक्त गौरांग विप्रवर इस ब्रह्माण्डको प्रेम-समुद्रमें सराओर कर रहे हैं ॥१॥

‘वे गौरांग कभी रोते-रोते ‘हे, कृष्ण’ ! उच्चारण कर (उच्च-स्वरसे) प्रलाप कर रहे हैं, कभी ‘हा राधे ! तुम कहाँ हो ? कह कर दीर्घ निश्वास छोड़ रहे हैं, कभी पृथ्वीपर पछाड़ खाते हैं, कभी वहे अधीर हो पड़ते हैं, कभी आनन्दके साथ नृत्य करते हैं, तो कभी अपने प्रणयीजनों (प्रियजनों) के निकट प्रलाप करते हैं, दीर्घनिश्वास छोड़ते हैं भूमिपर पछाड़ खाते हैं, अचेतन हो पड़ते हैं, नृत्य करते हैं

और रोदन करते हैं। अपने इस आचरणसे वे तृण आदि ब्रह्मलोक तक सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको अत्यन्त कन्दन करा रहे हैं ॥२॥

इस विचित्र व्यापारको देखकर मेरी बुद्धि भान्त हो गयी। उनको हे राधे ! तुम कहाँ हो, इस प्रकारसे अपना नाम लेते देखकर मैं सोचने लगी कि यहाँपुरुष मेरे प्राण-बल्लभ श्रीकृष्ण तो नहीं हैं; यदि यह सत्य है, तो मैं कहाँ हूँ ? इसी प्रकार हे कृष्ण ! तुम कहाँ हो ? इत्यादि प्रलापोंको सुनकर पुनः सोचने लगी कि यह विप्र मैं ही हूँ, वह कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। यदि मैं ही यह विप्र हूँ, तब मेरे प्रियतम माधव कहाँ हैं ? इस प्रकार मुझे थार-वार भ्रम होने लगा ; अनन्तर मेरी आँखे लग गयी ॥३॥

इस प्रकार श्रीमती राधिकाका स्वप्न-तृतीय सुनकर श्रीकृष्णने कहा—प्रिये ! मैंने तुमको अनन्तशाश्वी नारायण आदि अपनी अनेक मूर्तियोंका दर्शन कराया है और उनको देखकर तुम कभी भी विस्मित नहीं हुई, परन्तु अब उस ब्राह्मणको देखकर तुम क्यों विस्मित हो रही हो ? कुतुकिनी तुम्हारा चित्त क्यों भान्त हो रहा है ? वहे आश्चर्यकी बात है। यह विप्र कौन है ? ॥४॥

[तात्पर्य यह कि कृष्णकी उक्ति एक पूर्व घटनाको इंगित कर रही है। एक दिनकी बात है। श्रीमती राधा और श्रीकृष्ण बृन्दावनके एक सघन कुंजमें बैठकर प्रेमालाप कर रहे थे। बात ही बातमें श्रीमती

जी श्रीकृष्णसे बोली—माधव ! मझे नारायण मूर्ति और रुद्रनाथ-मूर्ति देखनेकी बड़ी लालसा हो रही है । अतः तुम इन दोनों रूपोंको अभी दिखलाओ । प्रियाजीके इस प्रकार कौतुकपूर्ण वचनोंको सुनकर श्रीकृष्णने उन्हें उन मूर्तियोंका दर्शन कराया था । काम्यवनमें वह शेषशाची नारायणमूर्ति आज भी विद्यमान है । दूसरे एक दिन श्रीमती राधिकाजी परम्पर वाचालापके प्रसंगमें पुनः बोली—‘प्रियतम ! ख्याँ पुरुषोंके मनोभावको लक्ष्यकर उनके हृदयत् सुखानुभूतिको जान लेनेमें जैसी पढ़ होती है, वैसे पुरुष ख्योंके मनके भावोंको नहीं समझ सकते ।’ कृष्णने उत्तर दिया—‘प्रिये ! बात तो ठीक है, परन्तु मेरे सम्बन्धमें यह बात नहीं है । मैं एक दूसरी मूर्ति में उसे अनुभव करता हूँ ।’ श्रीमतीने कहा—‘तुम भूठ बोल रहे हो ।’ कृष्णने दृढ़ताके साथ उत्तर दिया—‘मैं सच कहता हूँ ।’ श्रीमती राधिकाकी बात सुनकर श्रीकृष्णने स्वप्रमें अपने श्रीगौरांग-स्वरूपका दर्शन कराया था ॥४॥]

श्रीकृष्णने श्रीराधिकासे पूर्वोक्त परिहासमय वचनोंको कह कर क्षण भर चिन्ता कर मस्कराते हुए अपनी कौस्तुभ-मणिका संचालन किया । कौस्तुभ मणिका संचालन करना था कि क्षण भरमें वह मणि इस प्रकार दमकने लगी कि श्रीमतीजीने स्वप्रावस्थामें जैसा दर्शन किया था, ठीक उसी प्रकारसे स्थावर-जंगमके साथ उनके विलासके सारे चिह्न दीख पड़ने लगे ॥५॥

उस समय श्रीराधिकाजीने प्रदीप कौस्तुभमणिके प्रभावसे जाग्रत-अवस्थामें भी उस दृश्यको देखा, जिसे उन्होंने स्वप्रावस्थामें देखा था । ऐसा देखकर वे सोचने लगी—‘अहा ! मेरे प्राणनाथ इतने चतुर हैं जिसकी सीमा नहीं ।’ पश्चात् सोच विचार कर बोली—प्रियतम ! मैं तुम्हारा अभिप्राय समझ गयी । मैंने स्वप्रमें जिस विप्रवर को देखा है, वे विप्रवर गौरांग साज्जात तुम ही हो; क्योंकि तुम्हारे

ईपत् हास्यसे यह प्रकाश हो गया कि वे गौरांग तुम्हीं हो—तुममें ऐसा अभिमान है । परन्तु तुमने मेरे निकट स्पष्टरूपसे कुछ भी प्रकाशित नहीं किया है, इसलिये मेरे शरीरमें भी ऐसा अभिमान भुकूरित हो रहा है कि मैं भी गौरांग हूँ । दोनोंका इसप्रकार अभिमान होनेके कारण ऐसा लगता है कि तुम और मैं दोनों मिलकर ही गौरांग रूप हुए हैं ॥६॥

प्रियतम ! तुमने इस कौस्तुभमणिको प्रदीपकर इस मणिमें ही हमलोगोंके रविपद अर्थात् रविके स्थानको बार-बार दिखलाया है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम स्वयं ही अपनी शक्तियोंके साथ आविभूत होकर अपनेको और अपनी निखिल लीलाको प्रत्येक जीवके निकट व्यक्तकर पुनः इस चराचर जगत्को प्रेम-सागरमें निगमन करोगे ॥७॥

श्रीमतीजी पुनः बोली—प्रियतम ! मैंने सुना है कि तुम्हारे नामकरणके समय वेदज्ञ गर्गाचार्य महाशयने श्रीब्रजयति नन्द मद्राराजको बतलाया था कि हे नन्द ! तुम्हारा पुत्र कभी शुक्लवर्ण और रक्तवर्ण धारण किया था; अब वही कृष्णवर्ण हुआ है तथा फिर किसी युगमें पीतवर्ण भी धारण करेगा । मेरी यह बात कभी भूठी नहीं हो सकती । अतएव मेरा स्वप्र सत्य है—इस विषयमें मुझे कोई भ्रम (संदेह) नहीं है । इस गौरांगमें साज्जात् तुम ही अनुभव किये जा रहे हो, यह भी सत्य है ।

जिनका चित्त-भ्रमर इस विचित्र स्वप्रामृत अर्थात् स्वप्राविलासामृतका पान करेगा, वे बुद्धिमान व्यक्ति शीघ्र ही इस संदेह-स्वप्रसे जग जायेंगे । अर्थात् नन्दनन्दन कृष्णहीं श्रीशच्चीनन्दन गौर है या नहीं—इस संदेह-निद्रासे जग जायेंगे और श्रीचैतन्यको प्राप्तकर प्रेम-सागरमें विहार करेंगे; क्योंकि वे कुञ्जविहारी श्रीकृष्ण उनके प्रति असीम करुणामय होते हैं अर्थात् वे श्रीकृष्णके अत्यन्त प्रियपात्र हो जाते हैं ।

संन्त [सज्जन] के लक्षण

मृदु (७)

हरि-भजन परायण पुरुषोंका हृदय मृदु अर्थात् कोमल होता है । विषय-वासनाओंका स्थाग किये बिना हृदय कोमल नहीं हो सकता । और हृदय कोमल हुए बिना वहाँ भक्तिदेवीका प्रादुर्भाव भी नहीं होता । विषयी पुरुषोंका चित्त विषयोंके घात-प्रतिघातसे अत्यन्त कठिन हो जाता है । भीषण-भीषण दुखोंके श्वेषोंसे उनके हृदयकी कोमलता जाता रहती है । नाना-प्रकारकी असुविधा और अभावसे जर्जरित होनेके कारण उनकी मृदुता तिरोहित हो जाती है । तर्क-वितर्क उनके हृदयको शुष्क बना देता है । दूसरोंके व्यवहारसे छुच्छ होकर परदोऽह का आचरण करने लगते हैं, ऐसी दशामें भला उनके हृदयमें कोमलता कैसे यास कर सकती है ?

भगवान् विषयी पुरुषोंके निकट वज्रकी तरह कठोर होने पर भी सज्जन पुरुषोंके प्रति वे पुण्यसे भी अधिक कोमल होते हैं । भगवान् कोमलताके आश्रय-स्थल है । इसलिये उनमें स्थित कोमलताके प्रभावसे सज्जन पुरुषोंका चित्त भी अतीव कोमल हो जाता है । अनथोंके दूर होने पर साधकके हृदयमें जड़ विषयोंसे उपरति होती है और वहाँ शान्ति नामक एक अवस्था लक्षित होती है । इस शान्तिके विराज-मान होने पर वहाँ भगवन् विषयिनी रुचि पैदा होती है, जिससे साधकोंका चित्त सर्वदा आद्रौ रहता है । अनर्थमुक्त सज्जन शुद्धसत्त्वमें प्रतिष्ठित होते हैं । उनके हृदयमें अप्राकृत विषय और आश्रयके उद्दीपनीय भाव-सामूह सर्वदा प्रवाहित रहते हैं । इसीलिये सज्जन मृदु होते हैं ।

सज्जन पुरुष नित्यकाल मृदु होते हैं । वे साधन-कालमें हरि-विरोधी आचरण रूप दुःसंगका स्थाग

करते हैं । उनके इस आचरणसे विषयी लोग उनमें मृदुताका अभाव म नने हैं । परन्तु यह उनकी भूल है । परम मृदु गौरहरिके आश्रितजनोंका स्वभाव सर्वदा मृदु होता है । दुःसंगका परिस्थाग करने पर भी वे अपने अन्तः स्थित नैसर्गिक कोमलताका परिस्थाग नहीं करते । अतः सज्जन पुरुषोंके अतिरिक्त दूसरे मृदु नहीं हो सकते । असदू व्यक्ति कभी मृदु नहीं हो सकते हैं ।

शुचि--(८)

रुचिके भेदसे शुचिकी धारणा भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है । एक जिसे शुचि कहता है, दूसरे उसे अशुचि कहते हैं । अन्याभिलापी जिसे पवित्र समझ कर शुचि मानता है, भगवद्गुरु उसे शुचि स्वीकार नहीं करते । कर्म जिसे शुचिकी संज्ञा देता है, सज्जनगण उसे कहापि शुचि नहीं मान सकते । अहं-प्रहोपासक निर्भेद ब्रह्मज्ञानीके विचारसे जो शुचि है, सज्जनोंके विचारसे वही अशुचि है । कर्म और ज्ञान-रासोंमें निर्धारित सदाचारको सज्जनगण शुचि स्वीकार करनेके किये वाध्य नहीं हैं ।

सज्जन पुरुषोंका कहना है—जिस जगह हरिकथा नहीं होती, वही स्थान अशुचि है; जिस कालमें हरि की सेवा नहीं होती, वही काल अशुद्ध है । जो पात्र (मनुष्य आदि) भजनके अनुष्टानसे विमुक्त है, वही पात्र अशुचि है । महाभारत, रामायण और वेद परम पवित्र प्रन्थ है, क्योंकि इनके आदि, मध्य और अन्त सर्वत्र ही श्रीहरिका गुणगान है । हरिगुण-गानके कारण ही इनकी पवित्रता है ।

सज्जन पुरुष कहते हैं:—जहाँ हरि-कथाका आदर नहीं है, वह स्थान अशुचि है । भगवान् ही शुचिके एक मात्र आधार है । जहाँ भगवन् चर्चाका अभाव है, जहाँ भगवन् सम्बन्ध-शून्यता है, वह विषय

अशुचि है। मायिरु द्विष्टोणसे कर्मजन जल-अमिन और सूर्यको शुचि मानते हैं, वामतवन् उनमें हरि-सम्बन्ध नहीं देखनेसे ये कभी भी शुचि नहीं माने जा सकते हैं।

सबजन पुरुषोंका कहना है—कृष्ण-सम्बन्धरहित प्रत्येक विषय अशुचि है। कृष्ण ही सम्पूर्ण शुचिके केन्द्र हैं और कृष्णमत्त की यथार्थ शुचि है। कृष्ण-

सम्बन्धी वस्तुएँ शुचि हैं और कृष्ण-सम्बन्धरहित वस्तुएँ अशुचि हैं। वर्णके विचारसे लौकिक व्यवहार में जो सब शुचि-अशुचिकी धारणाएँ हैं, वे तात्कालिक हैं और वैज्ञानिकी शुचि धारणा नित्य शौचाचारसे पुष्टि होती है, जिसमें नित्य-कल्याण निहित है।

—जगद् गुरु वैविज्ञानाद श्रील प्रभुवाद

भक्तितत्त्वविवेक—तृतीय प्रबंध

भक्तिका स्वभाव-विवेक

शुद्धभक्ति-स्वभावस्य प्रभावात् वत्पदाक्षयात् ।

सदैव लभते जीवस्त चैतत्त्वमहं भजे ॥

शुद्धभक्तिके छः लक्षण हैं—के शास्त्री, शुभदा, मोक्षलक्ष्मीकृत, सुदुर्लभा, सान्द्रानन्द-विशेषात्मा (घन-आनन्द) और कृष्णाकर्पणी । साधन अवस्थामें भक्तिके केवल पहले दो गुण लक्षित होते हैं, भावावस्थामें पहले चार और प्रेमावस्थामें उक्त छ ही गुण लक्षित होते हैं। नीचे भक्तिके स्वभावगत इन छः गुणोंका क्रमशः विवेचन किया जा रहा है।

(१) बलेशास्त्री अर्थात् जो भक्तिका आश्रय लेते हैं, भक्ति देवी स्वभावतः उनके समस्त प्रकारके क्लेशोंको दूर कर देती हैं। बलेश तीन प्रकारके हैं—पाप, पापवीज और अविद्या । जीव जन्म-जन्मांतरोंमें जो पाप किये हैं, अथवा करेंगे, उन समस्त पापोंके कल-स्वरूप जीवको कष्ट भोगने पड़ते हैं। श्रीचैतन्य-शिक्षाभूत, द्वितीय वृष्टि, पंचम धारामें प्रवान-प्रधान पापोंका विवेचन हुआ है। उन पापोंको दो भागोंमें विभवत किया जा सकता है। वे दो भाग हैं—प्रारब्ध और अप्रारब्ध ।

जन्म प्राप्त कर उसी जन्ममें जीव जिन पापोंका कल भोग करनेके लिये वाध्य होते हैं, उन

पापोंको प्रारब्ध पाप कहते हैं। आनेवाले जन्ममें भोगके लिये बचे हुए पापोंको अप्रारब्ध पाप कहते हैं। जन्म-जन्मांतरोंमें जीव जिन-पापोंका आचरण करते हैं, वे पूर्यकृत अप्रारब्ध पापकी श्रेणीमें परिणामित होकर अगले जन्ममें प्रारब्ध पाप हो पड़ते हैं। इन प्रकार आनादि विधिके द्वारा जीव जन्म-जन्मांतरोंमें अपने लिये हुए पाप-कर्मोंका कल अवश्यमेव भोग करते हैं। ब्राह्मणके घरमें जन्म, मुसलमानके घर जन्म, धनीके घर जन्म, दरिद्रके घर जन्म, सुन्दर होना, कुरुप होना आदि सब कुछ प्रारब्ध कर्म-कल है। इनमें यथन-जन्म इत्यादि प्रारब्ध-पाप हैं। भक्ति प्रारब्ध और अप्रारब्ध दोनों प्रकारके पापोंको ध्वंश करती हैं। विधिपूर्वक ज्ञानका आचरण करने पर ज्ञान अप्रारब्ध कर्मको नष्ट करता है। ज्ञानियोंके शास्त्रके अनुसार प्रारब्ध कर्म अवश्य ही भोग करने पड़ते हैं। परन्तु भक्ति प्रारब्धको भी नष्ट कर डालती है—

यज्ञामधेय अवश्यानुकीर्त्तमात् यत्-

प्रद्वृणात् समरणादपि ववचित् ।

श्वादाऽपि सद्यः सवनाय कल्पते

कृतः पुनर्हते भगवत् दर्शनःत् ॥

हे भगवन् ! तुम्हारा नाम श्रवण और कीर्तन कर,

तुम्हें नमस्कार कर तथा तुम्हें स्मरण कर जब चाहडाल भी तुरन्त ही अर्थात् जन्मान्तरकी अपेक्षा न करके सबन-यागका अधिकारी हो जाता है अर्थात् ब्राह्मण-का अधिकार प्राप्त कर लेता है, तब तुम्हारे दर्शनसे क्या लाभ होता है, यह कहा नहीं जा सकता है। यहाँ दुर्जातिरूप प्रारब्ध पाप भक्तिसे स्वाभाविक रूपमें नष्ट हो जाता है—यह कहा गया है।

अब देखिये, भक्ति अप्रारब्ध-पापको भी नष्ट करती है—

अप्रारब्ध-कल्प कृटं बीजं फलोन्मुखम् ।
क्रमेणैव प्रलीयेत विष्णुभक्ति-रत्नामनाम् ॥
(पशुपुराण)

जिनको विष्णुभक्तिके प्रति अनन्यरूपसे अनुरोग है, उनके अप्रारब्ध पाप, कृट अर्थात् बीजत्व प्राप्तिके उन्मुख अर्थात् वे सब अर्जित-पाप जो केवल अभी वासनाका रूप ले रहे हैं, बीज अर्थात् वासनामय पाप-समूह और फलोन्मुख अर्थात् प्रारब्ध पाप-समूह सभी क्रमशः नष्ट हो जाते हैं। भक्तोंके पाप-नाशके लिये पृथक् रूपमें कर्म या ज्ञानमय प्रायशिच्छतकी आवश्यकता नहीं है।

जीवोंके हृदय-स्थित पाप-वासनाको पाप-बीज कहते हैं। पाप-बीज केवल भक्तिके द्वाराके द्वारा ही नष्ट होता है।

तैस्तान्यधानि पृथन्ते तपोदान-वतादिभः ।
नामर्मजं सदृदयं तदपोशाङ्ग्रि-सेवया ॥
(श्रीमद्भा०)

धर्मशास्त्रोंमें साधारण कर्ममार्गमें अनुष्ठित होनेवाले कष्टपूर्ण चान्द्रायण आदि ब्रतरूप प्रायशिच्छतों द्वारा तथा दूसरे-दूसरे शास्त्रोंमें तपस्या और दानादि-द्वारा जो पाप नाशकी व्यवस्थाएँ हैं, उनसे केवल वे पाप ही नष्ट होते हैं, जिनके लिये वे अनुष्ठित होती हैं। इन प्रायशिच्छतोंसे उन पापोंके बीज अर्थात् अविद्यासे उत्पन्न पाप-वासना नष्ट नहीं होती। पाप-वासना केवल हृषण-सेवा से ही दूर होती है। अर्थात् भक्तिके अतिरिक्त किसी भी दूसरे उपायसे पाप-बीज

रूप हृदय वासनाको दूर नहीं किया जा सकता है। भक्तिदेवीके हृदयमें विराजमान होने ही पाप-वासना और साथ-ही-साथ पुण्य-वासना भी समूल ध्वंश हो जाती है।

पशुपुराण और श्रीमद्भागवतमें भक्तिके अविद्या-हृदयके सम्बन्धमें उल्लेख है—

कृतानुयावा विद्याभिर्हरिभक्तिरत्तमा ।

अविद्या निर्देहस्याशु दावज्ञालेव पञ्चगीम् ॥

जब हरिभक्ति हृदयमें विराजमान होती है, तब उनके पीछे-पीछे विद्याशक्ति पधारकर जीवोंके हृदय-स्थित अविद्याको तत्क्षण दूर कर देती है, ठीक उसी प्रकार जैसे दावानल बनमें रहनेवाली सर्पिणीको दूर कर दाताती है।

यत्पाद पङ्कज-पलास-विलास-भक्तस्या

कर्माश्रयं प्रथितमुद्घथयन्ति सत्तः ।

तदृक्ष रिक्षमतयो यतयो निरुद्ध-

स्त्रोतोगणास्तमरयां भज वासुदेवम् ॥

विषयोंके प्रति विरक्त भक्तिवाले यतिगण अपनी समस्त इन्द्रियोंको विषयोंसे हटा कर भी अहंकाररूप हृदय-प्रथ्यीको उस प्रकार नहीं खोल पाते, जिस प्रकार भक्तजन श्रीकृष्ण-पद्मपश्च-पलास-विलास रूप भक्तिद्वारा अत्यन्त सहज ही खोल लेते हैं। अतएव परम आश्रयरूप उन श्रीकृष्णका ही भजन करो।

ज्ञान-चेष्टा द्वारा अविद्याका कुछ-कुछ नाश होने पर भी भक्तिके बिना निराधित साधकका पतन अनिवार्य है—

येऽन्येरविन्दाज विमुक्त-मानिनस्त्व-

व्यस्तमावादविशुद्ध तुद्यः ।

आकृष्ण कृच्छ्रेण परं पदं

तदः पतन्त्यधोऽमादत-युधमदक्षयः ॥

(श्रीमद्भा०)

हे कमलनयन ! जो लोग ज्ञानमार्ग द्वारा “नेति-नेति” कर जड़के अतिरिक्त कोई अवस्था प्राप्त होकर अपनेको मुक्त मानते हैं, और आपकी भक्तिसे विमुक्त

होते हैं, उनकी बुद्धि शुद्ध नहीं होती। वे अत्यन्त दुःख से अविद्याको पार कर ब्रह्मरूप परमपद लाभकर भी आपके धरण-कमलोंके नित्य आश्रयके अभावमें पुनः अथःपवित्र हो जाते हैं।

हे अन्तररंग भक्तबृन्द ! अविद्याका नाम सुनकर आपलोगोंको अविद्याका स्वरूप जाननेके लिये इच्छा उत्कृष्टा हुई होगी। इसलिये मैं अविद्याके सम्बन्धमें दो-एक बातें बतला रहा हूँ। श्रीकृष्णकी अनन्त प्रकारकी शक्तियाँ हैं। उनमेंसे चिच्छक्षित, जीवशक्ति और भायाशक्ति ये तीन शक्तियाँ हमारे निकट प्रधानरूपसे परिचित हैं। चित् शक्तिसे भगवद्वाम, भगवल्लीलाके समस्त उपकरण प्रकाशित होते हैं। चित् शक्तिका दूसरा नाम स्वरूप शक्ति है। जीव स्वरूपतः शुद्ध चित् तत्त्व है; परन्तु पूर्णताके अभावमें मायामें कैसनेके योग्य होते हैं—मायामुक्त नहीं होते। इच्छा करनेसे कृष्ण-विमुक्त होकर मायाके अधीन हो सकते हैं अथवा इच्छा करनेसे कृष्ण-उन्मुक्ता हारा मायासे सम्पूर्ण स्वतंत्र रह सकते हैं। बद्ध और मुक्त जीवोंका

यही पार्थक्य है। बद्धावस्थामें जीवस्वरूपके ऊपर माया दो प्रकारसे कार्य करती है। एक विद्या-वृत्तिसे दूसरे अविद्यावृत्तिसे। माया अपनी अविद्या-वृत्तिद्वारा जीवके स्वरूपगत शुद्ध अहंकारको आनन्दादित कर जड़तत्त्वमें अहंबुद्धि रूप मिथ्याभिमान (विकृत अहंकार) पैदा करा देती है। इस अविद्याका बन्धन ही जीवकी बद्धावस्थाकी प्राप्ति है। अविद्यासे मुक्त होनेपर जीव निरपाधिक होकर मुक्तवस्था लाभ करते हैं। अतएव अविद्या और कुछ नहीं है, केवल जीवके स्वरूपको भ्रममें डालनेवाली मायाकी एक वृत्ति-विशेष है। अविद्यासे जीवमें कर्म-वासना होती है। कर्म-वासनासे पाप-पुण्यकी क्रिया आरम्भ होती है। यह अविद्या ही जीवोंके समस्त दुःखोंकी जड़ है। एकमात्र भक्ति ही इस अविद्याका नाश करनेमें समर्थ है। कर्म केवल पापका नाशकर सकता है। ज्ञान—पाप-पुण्य दोनोंकी मूल वासनाका नाश कर सकता है। परन्तु भक्षित पापको, पाप-पुण्यके बीज वासनाको एवं वासनाकी जननी—अविद्याको भी जड़से ध्वंश कर डालती है।

—ॐविद्युपाद श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

अचिन्त्यभेदभेद

(पूर्व-प्रकाशित वर्ष ४, संख्या ३-८, दृष्टि १९६३ से आगे)

लीला और इतिहास

वैष्णवगण भगवानकी लीलाको नित्य मानते हैं। लीलाकी नित्यता स्वीकृत होनेसे सेव्य-सेवक-भावकी नित्यता भी स्वीकृत है। सेव्य-सेवक-भावकी नित्यता आस्वीकार करनेसे वैष्णव-धर्म शंकर-सम्प्रदायके अन्तर्भूत्क हो पड़ता है। शंकर-सम्प्रदाय सेव्य-सेवक का एकात्म स्थापन करनेके लिये वेद और उपनिषदोंका कदर्श करनेको बाध्य हुआ है और नाना-प्रकारकी युक्ति और तकोंका जाल बिसार कर शब्दकी अभिधा-वृत्तिके बदले लक्षण-वृत्ति प्रहण करनेके लिये

बाध्य हुआ है। अभिधा-वृत्ति ही शब्दोंके स्वाभाविक अर्थको प्रकट करती है—इस विषयमें विचार-जगतमें दो विचार नहीं हैं। जिस समय अभिधा-वृत्ति द्वारा अर्थका बोध नहीं होता, उस समय लक्षण-वृत्ति प्रहणकी जाती है। इसे भी दार्शनिक जगतके सभी विचार परायण व्यक्ति स्वीकार करते हैं। अतएव लक्षणाकी हेतुता सर्वसम्मत है। हम आचार्य शंकर जैसा वेद और उपनिषदोंका लक्षण हारा अर्थ प्रहण कर दार्शनिक जगतमें हेतुता स्वीकार नहीं करेंगे।

कोई कोई किसी असत् उद्देश्य हो पूरा करनेके लिये ऐतिहा प्रमाणोंमें भी लक्षणाका आश्रय लेते हैं। उदाहरण-स्वरूप वैष्णव नामधारी उक्त दोनों प्रसिद्ध लेखकोंके नाम लिये जा सकते हैं। इनमें सर्व प्रधान श्रीयुत सुन्दराजनन्द-विद्वान्विनोद हैं और दूसरे इच्छे उन्निष्ठ भोजनगारी माननीय श्रीयुत राधामो-विन्द नाथ महाशय हैं। इनके दलमें दो-चार और नहीं हैं—ऐसी बात नहीं है। कानुप्रिया गोस्वामी, सत्यानन्द गोस्वामी आदि इसी दलके व्यक्ति हैं। इन सबने सत्य ऐतिहासिकी अवज्ञा कर तथा स्वाभाविक इतिहासको पलट कर स्वक्षेत्रकलित्व नवीन इतिहासकी सृष्टि की है। इनका ऐसा कार्य वैष्णव-अपराधमूलक है। ये सभी श्रीमन्महावाचार्य को गोदीय-वैष्णव-सम्प्रदायका मूल सूत्र स्वीकार नहीं करता चाहते। उनकी युक्तिका प्रधान अब 'लक्षण' है। इतिहासकी स्वभाविक गतिको बदलकर व्यर्थ ही कष्ट-कल्पना कर नयी कुछ सृष्टि करनेका नाम ही ऐतिहासिक लक्षण-वृत्तिका प्रयोग करता है।

इसी प्रकार लक्षणाका आश्रय लेकर प्रसिद्ध इतिहास लेखक डा० श्रीयुत-विमानविहारी मजूमदार एम० ए० पी० ए८, डौ महोदयने 'श्रीचैतन्यचरितेर उपादान' नामक प्रन्थमें असंभवको भी इस प्रकारसे संभव करनेका प्रयत्न किया है जिसका कोई ओर-छोर नहीं है। विशेष दुःखकी बात है, कलकत्ता विश्वविद्यालयने इस प्रन्थका प्रकाशन कर बड़ा अनर्थ किया है। ऐसी आपात्य पुस्तकका प्रकाशन विश्वविद्यालय हारा किये जानेकी हम कोई उचित युक्ति नहीं देख पाते हैं। उन्होंने श्रीचैतन्य महाप्रभुकी अप्राकृत चरितावलीके प्रति जैसा कठाक्क किया है, उससे उनके चरित्र और मनोगत भावोंका ही परिस्फूट परिचय पाया जाता है। इस पुस्तकको जो पढ़ेगे, उनका सर्वनाश अवश्यंभावी है। उदाहरण-स्वरूप उक्त विश्वविद्यालयसे 'श्रीचैतन्यदेव ओताँहार पार्षद, और 'बैंगलाचरित प्रन्थे श्रीचैतन्य' ये दो पुस्तकें और भी प्रकाशित हुई हैं। इनके लेखक श्रीगिरिजाशंकर राय चौधरी हैं। इन पुस्तकोंमें भी

श्रीमन्महाप्रभुके चरित्रके प्रति व्यर्थ ही कठाक्क किया गया है। ये तीनों पुस्तकें सर्वसाधारणाके लिये अत्यन्त अहितकर हैं। हम कलकत्ता विश्वविद्यालय से अनुरोध करते हैं कि विश्वविद्यालय उपर्युक्त तीनों पुस्तकोंको विश्वविद्यालयके प्रन्थागारके सामने प्रकाश्यरूप में अग्निकुण्ड प्रक्षुतकर उसमें पूर्णाहुति दें।

इतिहास-लेखक अपनी-अपनी वहनाके अनुसार जैसी-तैसी मन-गड़न्त बातें लिख देंगे और उसे इतिहास मान लिया जायगा—ऐसी बात नहीं है। मन-गड़न्त कपोल-कलित्व बातोंको इतिहास नहीं माना जा सकता है। यदि पोस्टग्रेजुएट (Post Graduate) लासके छात्र विश्वविद्यालयके ऐसे ऐसे व्यक्तियोंके ऊपर निर्भर कर श्रीमन्महाप्रभुका चरित्र अनुशीलन करें, तो महाप्रभुके सम्बन्धमें उनकी धारणा अत्रामाणिक और मिथ्याके अतिरिक्त और क्या होगी ? इस प्रकारके व्यक्तियोंसे उनका बड़ा ही अहित होगा। केवल यही नहीं, यदि उक्त तीनों पुस्तकोंके प्रति गौरवकी हृषि अपनायी गयी, तो इससे बंगालके सर्वशेष्यर्थ-सम्प्रदायके ऊपर व्यर्थ ही विद्वेषमूलक ध्याकमण्य करना होगा। यदि कोई लेखक विद्वेषकी भावनासे इतिहासकी रचना करता है, तो उससे विश्वका अहित ही होगा। विमान मजूमदार और गिरिजाशंकर महोदयोंके प्रन्थोंका पाठ करनेसे उनकी विद्वेषमूलक भावनाओंका स्पष्ट ही पता चल जाता है। मैं पृथक लेखमें उनकी आयुक्तिसंगत मनोवृत्तिकी विस्तृत आलोचना करूँगा।

ऐतिहासिकगण नास्तिक होनेके कारण लीला स्वीकार नहीं करते। उनकी हृषिमें किसी ऐतिहासिक मानव या अतिमानवकी कियाएँ 'लीला' है। परन्तु यह उनका भ्रम है। अथार्व 'लीला'-अतिमर्त्य, अतकर्य, और अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न क्रिया-समूहको कहते हैं। इतिहास लेखकोंका मस्तिष्क नितान्त संकीर्ण होता है। उनके संकीर्ण मस्तिष्कमें दर्शनिक युक्ति और विचार-समूह प्रवेश न कर सकनेके कारण वे लीला का अचिन्त्यत्व और अतिमर्त्य धारणा करनेमें असमर्थ हैं। यहाँ पर हम श्रीमन्महाप्रभुके प्रति गिरि-

जारायकी उक्तिशा उद्भाव कर रहे हैं, जिसमें उन्होंने श्रीकविराज गोस्वामीकी लेखनीके प्रति कटाक्ष किया है—

“कौन धर्म-प्रवर्त्तकेर परवर्तीरा यतई दिन आय, ततह वेशी ऐ धर्म-प्रवर्त्तकेर अलौकिक महिमा प्रचार करेन। इहाते जन-साधारण वेशी आकृष्ट हय, किन्तु ऐ धर्म-प्रवर्त्तकेर अति निकट अनुवर्त्तीयेरा अलौकिकत्वेर प्राचुर्य करेन ना। कुं कुं धर्मान्ध लोकेरा लौकिक अपेक्षा अलौकिक अधिक विश्वास करे” कु अर्थात् “किसी धर्म-प्रवर्त्तकके अनुयायी जितने ही अधिक दिन बीतते जाते हैं, उस धर्म-प्रवर्त्तकके सम्बन्धमें अलौकिक धटनाओंका अधिक प्रचार करते हैं। इससे जन साधारण अधिक आकृष्ट होते हैं; परन्तु उस धर्म-प्रवर्त्तकके निकटतम अनुयायी अलौकिकताको बढ़ा चढ़ाकर प्रचार नहीं करते।”

परन्तु भगवलीलाके अचिन्त्यत्व और अतिमत्यको उपलब्धि करनेमें इन लेखकोंके असमर्थ होनेके कारण ही भगवलीलामें अचिन्त्यत्व और अतिमत्यका अभाव है—ऐसा प्रामणित नहीं होता। भजन-नन्दी दार्शनिकगण उन्हें अक्षर अक्षरकी शिक्षा देनेमें समर्थ हैं। वेद-वेदान्त उपनिषदादि हमें सर्वदा शिक्षा देते हैं कि भगवत्तत्त्वमें युक्तिकाका स्थान नहीं है। आसुरिक धर्ममें प्रतिष्ठित पापरडी ही ईश्वर-तत्त्वमें युक्तिकाका प्रयोग करते हैं। जीव और ईश्वरमें नित्य भेद है—इसी भेदके ऊपर ही भगवलीलाका विस्तार है। विद्याविनोद महाशय यह कहना चाहते हैं कि जीव और ईश्वरका अद्यत्व ही श्रीजीवगोस्वामीका जीव-तत्त्व सम्बन्धी सिद्धान्त है। परन्तु वास्तवमें जीव गोस्वामीका यह सिद्धान्त नहीं—बल्कि यह विशुद्ध अद्यत्वादियोंके निरीश्वर तत्त्वका विचार है। यदि जीव और ईश्वरमें परस्पर भेद न स्वीकृत हो, तो लीला तत्त्वका अस्तित्व ही लोप हो जावे। उपनिषदोंमें जहाँ भेद और अभेद दोनों प्रकार की शिक्षाएँ हैं, वहाँ भेदकी ही प्रबलता है—गोस्वामी

महोदयों और आचार्यवर्गका यही अभिमत है। परमात्म-सन्दर्भमें जीव गोस्वामीने इसे स्पष्टरूपसे कह दिया है।

वैष्णवजन भगवान्की लीलाको नित्य मानते हैं। इसीलिये वे भगवान्के नित्य-सेवक हैं। सेवामें ही उनको आनन्द मिलता है। सेव्य-सेवक नित्य होने पर ‘सेवा’ भी नित्य होगी, इसमें संदेहकी गुणादृश ही नहीं है। यह सेवावृत्ति नित्यानन्द-स्वरूप होती है। सेवा ही वैष्णवोंका परम प्रयोजन है। जो लोग नारायणकी उपासना करते हैं, वे लक्ष्मी-नारायणका नित्यत्व स्वीकार करते हैं और नित्यकाल उनकी सेवा करनेमें परम-प्रीति लाभ करते हैं। जो श्रीसीता-रामके उपासक हैं, वे श्रीसीता रामका नित्यत्व स्वीकार कर ही उनकी सेवाये नित्यकाल निमन रहते हैं। और जो राधाकृष्णनको उपासना करते हैं, वे कृष्णलीलाका नित्यत्व अनुभव करके ही उनकी सेवामें अपने जीवनको उत्सर्ग कर सेवानन्दमें विभोर रहते हैं।

हम उपासना-मार्गमें कृष्णचन्द्र, रामचन्द्र और नारायण आदि विष्णुतत्त्वके उपासकोंको वैष्णव कहते हैं। ये सभी उपासक वैष्णव हैं। श्रीमन्महाप्रभुके सेवक भी उन्नतम वैष्णव-भेदीनुक्त हैं। क्योंकि गौर-विष्णुप्रिया या गौर-नित्यानन्द प्रभु अथवा पंचतत्त्वकी सेवा नित्य और सनातनी है। परतत्त्व एक होकर भी अचिन्त्य शक्तिमत तत्त्व है। इस अचिन्त्य-शक्तिके प्रभावसे वह एक ही तत्त्व ऐश्वर्यमूर्त, कहरायमूर्त, माधुर्यमूर्त और श्रीदार्थमूर्त तत्त्वके रूपमें अवस्थित होकर एक ही ‘वैष्णव’ श्रेणीके सेव्यरूपमें नित्य-विराजमान हैं।

निर्विशेष-प्रस्तु—शून्यका प्रतीक है। अतः उसमें आनन्दका सर्वथा अभाव है। इसलिये निर्विशेषवादी-श्रेणीके चित्ताशील व्यक्तियोंको अवैदिक और नास्तिकी श्रेणीमें रखा गया है। ऐतिहासिकोंको भी इसी श्रेणीमें रखा गया है,

क्योंकि ये लोग भी ईश्वरको अविनय शक्तिसे अस्थीकार करते हैं। प्रकृतिके कालधर्मने उनके मस्तिष्कको इतना विगड़ दिया है कि वे किसी प्रकार भी समझ नहीं पा सकते कि स्वयं श्रीमन्महाप्रभु ही नारायण हैं, रामचन्द्र हैं, कृष्णचन्द्र हैं और गौरचन्द्र हैं। नास्तिक ऐतिहासिक रामचन्द्रके जन्मसे बहुत पहले रामायणकी उपत्तिकी बात धारणा करनेमें असमर्थ हैं। रामोपासक वैष्णव इसे पूर्णरूपसे विश्वास करते हैं कि श्रीरामके जन्मसे बहुत पहले ही रामायणकी रचना हो गयी थी। लीलाका नित्यत्व स्वीकार नहीं करनेसे ऐतिहासिकोंके दिमागमें यह बात कैसे प्रवेश कर सकती है। नित्य-सनातन वस्तु किसी कालको आश्रयकर अपनी कोई लीला भौम जगन्में प्रकट करते हैं। भगवत्-तत्त्वका आविर्भाव होते ही भौम-जगन्मकी प्राकृत धारा दूर हो जाती है। सनातन वस्तुके साथ माया या प्रकृति तत्त्वका स्वरूपगत कोई संबन्ध नहीं है। श्रीरामचन्द्र दशरथके घरमें आर्विभूत हुए थे—इसे ऐतिहासिक अस्थीकार नहीं करते। भारतके समस्त संप्रदाय इस ऐतिहासिक सत्यको सिर-मुकाकर स्वीकार करते हैं। किन्तु श्रीरामचन्द्रके जन्मके पहलेसे ही राजा दशरथ अपने राजमहलमें श्रीसीतारामकी मूर्तिकी पूजा करते थे—इसे सुनकर ऐतिहासिक चौंक उठेगो कि यह कैसे संभव है? हम कहते हैं,—यह सत्य और ध्रुवसत्य बात है—इसमें संदेह करने की कोई बात नहीं है। राजा दशरथ द्वारा पूजित श्रीसीता-रामकी मूर्तियाँ श्रीमध्यमुनि द्वारा प्रतिष्ठित होकर आज भी उत्तराहि मठमें सेवित हो रही हैं। यह ऐतिहासिक सत्य घटना है। उक्त श्रीसीता-राम मूर्तिके सम्बन्धमें जगद्गुरु गौड़ीय वैष्णवाचार्य-मुकुटमणि श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वमी द्वारा संगृहीत ऐतिहा नीचे उढ़ा दिया जा रहा है—

श्रीमध्याचार्यके सीताराम

“‘आध्यात्म-रामायण’ के १२वें, १३वें, १४वें और १५ वें अध्यायमें मूल श्रीसीता-मूर्तिके

संबन्धमें इस प्रकार उल्लेख मिलता है—श्रीरामचन्द्रके राजत्यकालमें एक ब्राह्मण रहने थे, जिन्होंने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि वे प्रतिदिन श्रीरामचन्द्रका दर्शन करनेके पश्चात् ही भोजन करेंगे। एक दिन वार्ष्यवशतः श्रीरामचन्द्र सात दिनों तक प्रजाके सामने उपस्थित न हो सके। इसलिये रामदर्शनके प्रति हड़ निष्ठायुक्त वह ब्राह्मण सात दिनों-तक एक बूँद जल तक भी प्रहण नहीं किये। आठवें दिन श्रीरामचन्द्रके राजदरवारमें पधारने पर उन ब्राह्मण देवताने थड़े आनन्दस श्रीरामचन्द्रके दर्शन किये। श्रीरामचन्द्रजी ब्राह्मणकी बैसी निष्ठा देखकर थड़े प्रसन्न हुए और लद्मणजीको आज्ञा दी की उनके घरमें रखी हुई श्रीराम-सीताकी युगल मूर्ति उन ब्राह्मण देवताको दी जावे। लद्मणजीने श्रीरामचन्द्रकी आज्ञानुसार श्रीरामसीताकी युगलमूर्ति उन ब्राह्मणको दे दिया। ब्राह्मणने जीवन भर तक उन युगलमूर्तियों सेवा कर मृत्युके समय उन्हें हनुमानजीको दे दिये। बहुत काल तक उन मूर्तियों की सेवा करनेके पश्चात् हनुमानजीने उन मूर्तियोंको अपने प्रिय भीमसेनको उस समय विदाईमें दे दिया, जब कि भीमसेन गन्धमादन पर्वत पर उनसे मिले थे। भीमसेनने उन मूर्तियोंको राजप्रासादमें स्थापित कर दिया। तबसे उस बैशके अन्तिम राजा चेमकान्तके राजत्यकाल तक उन दोनों विप्रहोंकी सेवापूजा होती रही। तत्पश्चात् वे मूर्तियाँ उत्कलके गजपति नरेशोंके राजकोपमें संरक्षित रहीं। श्रीमध्याचार्यने अपने शिष्य नरहरि तीर्थको राजकोपसे उन श्रीविप्रहों को संप्रहकर सेवा करनेकी अनुमति दी थी। महाराज इदवाकुके समयसे ही सूर्यवंशी राजाओंके राजप्रसादमें उक्त सीता-राम विप्रहोंकी सेवा होती थी। वीछे श्रीरामकी आज्ञासे लद्मणजीने उन्हें पूर्वोक्त ब्राह्मणको दे दिया। श्रीमध्व अपने तिरोभावसे तीन महीने सोलह दिन पहले उन मूर्तियोंको अपने शिष्य नरहरि तीर्थसे मङ्गवाकर उड़ायीके मूल-मठ उत्तर-राही मठमें स्थापित किया था। तबसे श्रीमाध्व आचार्यगण उनके अधिकारी हैं।”

प्रार्थितिहासिक युगके सम्राटोंके इतिहाससे नाना-प्रकारकी लीलाओं की सूति होती है। प्राचीन कालसे सूर्यवंश और चन्द्रवंश ये दो वंश चले आरहे हैं। इन दोनों वंशोंके सभी राजा विष्णुभक्त थे। भारतीय प्राचीन संस्कृत साहित्यका अवलोकन करनेसे ऐसा कही भी दृष्टिगोचर नहीं होता कि इन दोनों वंशोंके इतिहासमें कहीं विष्णुको परम तत्व न माना गया हो। विष्णु-तत्त्वका परतमत्व स्वीकृत होने पर भी उक्त दोनों वंशोंमें उपास्य-विष्णुका भैरव है। इन्द्राकु आदि सूर्य वंशीय राजा श्रीराम-चन्द्रके आविर्भावके बहुत पहलेसे ही सीता-रामके उपासक थे और चन्द्रवंशीय राजा कृष्ण-भक्त थे। चन्द्रवंशकी स्तिथि और सुशीतल छावामें श्रीकृष्ण-चन्द्रकी परम-मधुर लीला प्रकाशित हुई है। सूर्य-वंशीय राजागण ज्ञात्र-नीति द्वारा परिचालित होकर उपास्य-तत्त्वके प्रति काहुरथ-मिश्रित दास्य-रसकी सेवा प्रकाश किये हैं।

श्रीमन्मध्वाचार्यके चेत्र—उड़पीमें हम उभय

वंशीय उपास्य तत्त्वोंकी सम्मिलित विलासमूत्तियोंकी एकत्र उपासना लक्ष्य करते हैं। मध्वाचार्य त्रेतायुगमें श्रीरामचन्द्रके सेवक—हनुमान थे; इसे हम पहले ही बतला चुके हैं। हम यह भी बतला चुके हैं कि यह मूर्ति (सीता-राम) वंश-परम्परा से दशरथको और पुनः उनसे रामको मिली थी, जो पुनः ब्राह्मणके हाथोंसे हनुमानजीको प्राप्त हुई थी। हनुमानसे द्वापर युगमें भीमसेन उन मूर्तियोंको प्राप्त हुए थे। भीमसेन चन्द्रवंशके थे। स्मरण रहे कि मध्वाचार्य ही द्वापर-युगमें भीमसेनके रूपमें कृष्णके अनन्य भक्त थे। अब लक्ष्य करनेकी बात है कि चन्द्रवंशमें आविर्भूत कृष्ण-भक्त भीमसेन ही प्रथम व्यक्ति हैं, जो इस सूर्यवंशीय उपास्य मूर्ति—सीताराम-विष्णुके भी उपासक हैं। श्रीमध्वाचार्य हनुमान हैं, भीम हैं और दोनोंके अवतार हैं—इसे मध्व सम्प्रदाय और दूसरे-दूसरे समस्त धर्म-सम्प्रदायोंके लोग जानते हैं। अतः सूर्य और चन्द्र दोनों वंशोंके दोनों उपास्य तत्त्व श्रीमध्वके स्थापित मन्दिरमें आज भी विराजमान हैं। यह भी श्रीमन् महाप्रभुकी पड़भुज मूर्तिका एक तत्त्व है।

यशोदानन्दन कृष्ण ही शर्चीनन्दन गौर हैं

श्रीगौरांग महाप्रभु परम परिपूर्ण चेतनवस्तु—विभुवस्त-त्रिकाल सत्यवस्तु । अज्ञातावश कोई कोई उनको महापुरुष, कोई-कोई धर्म प्रचारक, कोई कोई समाज सुधारक और कोई कोई अवतार भी मानते हैं। परन्तु वास्तवमें वे मानव-कलना से पूर्ण अतीत, अवतारोंके भी अवतारी साक्षात् ब्रजेन्द्र नन्दन श्रीकृष्ण हैं। वे अनादि, सर्वाश्रादि एवं समस्त कारणोंके मूल कारण हैं। वे असमोद्द तत्त्व हैं—न तो कोई उनके समान ही है, और न उनसे कोई अत्र ही है, वे परतत्त्वकी सीमा हैं।

श्रीगौरांग-सुन्दर ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णसे अभिन्न होने पर भी विप्रलंभ-अवतार है। श्रीकृष्णचन्द्र

संभोगस्य विष्णु हैं और श्रीगौरचन्द्र विप्रलंभमय विष्णु हैं। वे सोलह कलाओंसे युक्त परिपूर्ण वस्तु हैं। वे स्वर्य भगवान् हैं। वे अजन्मा होते हुए भी जगन्मा उद्धार करनेके लिये कृपाकर यशोदा से अभिन्न श्रीशर्चीदेवी और नन्दमहाराजसे अभिन्न श्रीजगन्नाथ मिश्रके घर श्रीबृन्दावनसे अभिन्न माया-पुरमें अवतीर्ण हुए हैं। भगवान्के नित्यपार्षद श्रीकृष्ण दास कविराज गोस्यामीने श्रीचैतन्यचरितामृतमें लिखा है—

सेहै ब्रजेश्वर इहों जगज्ञाथ विता ।

सेहै ब्रजेश्वरी इहों शर्चीदेवी माता ॥

सेहै नन्दसुत इहों चैतन्य गोसाई ।

सेहैं वलदेव हहों नित्यानन्द भाई ॥
(चै० च० आ० १३२६४-२६५)

यशोद-नन्दन हैजा शचीर नन्दन ।
चतुर्विंश भक्तमाद करये आस्वादन ॥
(चै० च० आ० १३२६५)

स्वयं भगवान् कृष्ण विष्णु परतत्त्व ।
पूर्णज्ञान, पूर्णनिन्द, परम महत्व ॥
नन्दसुत बलि' जारे भागवते गाई ॥
सेहैं कृष्ण अवतीर्ण चैतन्य गोसाई ॥
(चै० च० आ० २८८-९)

एक कृष्ण सर्वसेव्य जगत् ईश्वर ।
आर यत सब तौर सेवकानुचर ॥
सेहैं कृष्ण अवतीर्ण चैतन्य ईश्वर ।
अतपूर्व आर सब तौहर किङ्कर ॥
(चै० च० द० १०१-८२)

नित्यसिद्ध गौडीय महाजन श्रील नरोत्तम
ठाकुरने भी कहा है—

वजेन्द्र-नन्दन येहैं शचीसुत हैज सेहैं ।
बजराम हहक निताई ।
दीन हीन यत छिल, तरे गोरा डढारिल ॥
तार साढ़ी जगाई-मधाई ॥
(प्रार्थना)

व्यासायतार श्रीवृन्दायनदास ठाकुरने भी
श्रीचैतन्य-भागवत-ग्रन्थमें लिखा है,—

अजानु-ज्ञनित भूजी कनकावदाती
संकीर्तनैक-पितरी कमलायताची ।
विश्वभरौ द्विजवरौ युगधर्म पालौ
बन्दे जगत्-प्रिय करी करणावतारी ॥
नमस्त्रिकाल-सत्याय जगायाय- सुताय च ।
सन्मृत्याय सपुत्राय सकलत्राय ते नमः ॥
(चैतन्यभागवत आ० १११-२)

सेहैं कृष्ण सालाल चैतन्य भगवान् ।
कीर्तन विहारे हइयाङ्केन विद्यमान ॥
कछियुगे सर्वधर्म हरिसंकीर्तन ।
सब प्रकाशिलेन चैतन्त-नारायण ॥(चैतन्यभागवत)

किसी-किसीका कहना है—श्रीचैतन्यदेव एक उच्चकोटिके भक्त या महापुरुष अथवा एक वर्षे धर्मप्रचारक मात्र हैं; परन्तु उनके अन्तर्गत भक्त श्रीरूप गोस्वामीने उनकी प्रार्थना इस प्रकार की है—

नमो महावदान्याय कृष्ण प्रेम प्रदाय ते ।

कृष्णाय कृष्णचैतन्य नामे गौरत्विषे नमः ॥

—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ही साज्ञान श्रीकृष्ण हैं। वे ही सबसे मूल आश्रय हैं। वे सच्चिदानन्द वस्तु हैं। वे कोई ऐतिहासिक या परिणामशील वस्तु नहीं हैं। वे कालातीत वस्तु हैं। उनका नाम—श्री-कृष्णचैतन्य है; उनका हृष—गौर वर्णका हैं; उनका गुण—महावदान्यता है; उनकी लीला—कृष्ण-प्रेम प्रदान करना है; तथा उनका स्वरूप—श्रीकृष्ण है। संसारमें जो दान कही भी पाया नहीं जाता या अन्यत्र कही भी संभव नहीं है, उस दानके एक मात्र दाता हैं, वे श्रीकृष्णचैतन्य हैं।

‘श्रीकृष्ण परमात्मा और ब्रह्मके भी मूल आश्रय हैं—यह बात जिन्होंने जगत्को विशेषरूपमें बतलाया है, वे श्रीकृष्णचैतन्य ही—स्वयं कृष्ण हैं।

द्वापरयुगमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने संसार को बतला दिया है कि—‘मैं ही साज्ञान भगवान् हूँ, मेरी उपासना करो। तुम्हारा कल्याण होगा।’ परन्तु उनके द्वारा इतना बड़ा आश्वासन दिये जाने पर भी अधिकांश लोग श्रीकृष्ण उपासनाका गूढ़ रहस्य समझ नहीं सके। इसीलिये करुणावरुणालय भगवान् भक्त के रूपमें—भजन करने वाले रूपमें इस जगत्में आये, गौराङ्गरूपमें। इसीलिये शास्त्र कहते हैं कि—गौराङ्ग-देव ही कृष्ण हैं; वे ही अवतारी हैं। श्रीगौराङ्गदेव राम, नृसिंह आदिकी तरह केवल अवतार ही नहीं हैं। वे तो समस्त अवतारोंके अवतारी पूर्ण भगवान् या अंशी भगवान् हैं।

अज्ञानतावश श्रीगौराङ्गदेवको कोई चाहे जिस हृषमें क्यों न देखे, यदि वह उनकी लीला-कथाओंका अवलोकन करे, उनके सेवकोंके निकट जाय, तो उसकी

आनं धारणा अवश्य ही दूर होगी—इसमें संदेह नहीं। उस समय वह गौराङ्गदेवकी कृष्णसे ही उनको भगवानके रूपमें जान सकेगा।

स्वयं भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही जगतका उद्धार करनेके लिये श्रीगौराङ्गदेवके रूपमें आवतीएँ हैं। कलियुग पावनावतार श्रीकृष्णचैतन्य नाम धारण करने वाले श्रीगौराङ्गदेव ही कलियुगी जीवोंके उपास्य हैं एवं श्रीकृष्णनाम-संकीर्तन ही कलियुगका धर्म या उपासना है। यह शास्त्रकी वाणी है। इस विषयमें शास्त्र शिरोमणि श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार कहा गया है—

इति द्वापर उर्वीश स्तुतवित जगदीश्वरम् ।
नानादुर्भ-विचानेन कलात्रपि तथा अग्नु ।
कृष्णवर्णं स्विष्टाङ्गुणं साहोपाङ्गाङ्ग-पार्षदम् ।
यहौः संकीर्तन-प्रायैर्जन्मित हि सुमेष्वसः ॥ १
(श्रीमद्भागवत ११.३.२५-२६)

एकादश स्कंधमें युगावतारके प्रसंगमें नवयो-गेन्द्रमेंसे श्रीकरभाजनजी श्रीनिमि महाराजको बतला रहे हैं—‘महाराज ! द्वापर-युगके अवतारका नाम और रूप-रङ्ग तथा उनका स्थाय कैसे किया जाता है—ये सब बातें मैंने आपको बतलायी हैं; अब मैं कलियुगके अवतार तथा उनकी स्तुतिके सम्बन्धमें बतला रहा हूँ, आप अवगत करें—

कलियुगमें श्रेष्ठबुद्धि सम्बल पुरुष श्रीहरिनाम संकीर्तन द्वारा कलियुगके उपास्य श्रीगौराङ्गदेवकी उपासना करते हैं। कलियुगके उपास्य कौन है—जो ‘कृष्ण’ को ही निरन्तर वर्णन करते हैं अर्थात् ‘कृष्ण’ ‘कृष्ण’ रटते रहते हैं, कीर्तन करते हैं; जो अकृष्ण अर्थात् गौरवर्णके हैं और जो अपने पार्षदोंके साथ निरन्तर कृष्णनाम कीर्तनमें मत्त हैं। कलियुगके उपास्य उन गौराङ्गदेवकी स्तुति किस प्रकार होती है, बतलाते हैं—

ध्येयं सदा परिमवस्तमभीष्टोहं
सीर्थास्पदं शिव-विरिज्ञि-नुतं शरण्यम् ।

नृथातिंहं प्रथातपालं भवतिष्ठ पोतं ।
वन्दे महापुरुषं ते चरणारविन्दम् ॥
त्यक्त्वा भुदुस्त्यज-सुरेपित-राजवल्लभम्
भर्मिष्ठ चार्यं वचसा यदगादरथम् ।
मायामूर्तं विष्टव्येपितमन्वधावद्-
वन्दे महापुरुषं ते चरणारविन्दम् ॥
(श्रीमद्भागवत ११.३.२३-२४)

—हे शरणागतरक्षक ! हे महाप्रभो ! आपके चरणारविन्द सदा-सर्वदा ध्यान करने योग्य, जीवोंके माया-मोहका विनाश करनेवाले तथा भक्तों की समस्त अभीष्ट वस्तुओंका दान करने वाले काम-धेनुस्वरूप हैं। वे तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाले स्वयं परम तीर्थ स्वरूप हैं; शिव, ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता उन्हें नमस्कार करते हैं और चाहे जो कोई उनकी शरणमें आ जाय, उसे स्वीकार कर लेते हैं। भक्तोंकी समस्त आर्ति और विपत्तिके नाशक तथा भव-सागरसे पार उत्तरनेके लिये जहाज हैं। मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दोंकी बन्दना करता हूँ। हे महाप्रभो ! देवगण जिनकी कृपाकरदाताकी मतन् अभिलाषा करते हैं, जो आपको प्राणोंसे भी ऋषिक प्रिय हैं, उन दुस्त्यज्य स्वराज्यलक्ष्मी—विष्णुप्रियाका भी परित्याग कर आपने किसी ब्राह्मणके अभिशापको स्वीकार कर उनके वचनोंकी रक्षाके लिये संभ्यास प्रहण किया है, पुनः वहिर्दृष्टिसे आचार्यरूप मर्यादा अर्थात् वैधी-भक्तिका आचरण किया है तथा अन्तर्दृष्टिसे आपने कृष्णके विरहमें विरहित श्रीमती राधिकाके भावोंमें विभवित होकर रागत्मिका-भक्तिका आदेश दिखलाया है; तथा मायामृग अर्थात् मायाके पीछे-पीछे दौड़नेवाले (अन्याभिलापी, भोगी, कुतार्कि, पाषणही आदि संसारमें आसक्त मनुष्योंके प्रति महाकृष्ण दिखलाते हुए अपने चरणोंके स्पर्शसे अर्थात् उत्तर और दक्षिण भारतमें गमन कर भवसागरमें छूबते हुए लोगोंको भगवद्भक्ति प्रदान उन्हें कृष्ण-प्रेम-सिन्धुमें निमज्जित किया है; मैं आपके चरणारविन्दोंकी बन्दना करता हूँ।

चैतन्यचरितामृतमें उपरोक्त 'कृष्णवर्णं त्विषाऽ-
कृष्णं' श्लोककी व्याख्या इस प्रकार की गयी है—

व्यक्त करि भागवते कहे बार बार ।
कलियुगेर युगधर्मं युग- अवतार ॥
सुनह सुख लोक चैतन्य महिमा ।
एहं श्लोके कहे तार महिमार सीमा ॥
'कृष्णं' एहं दृढ़ वर्णं सदा आर सुखे ।
अथवा कृष्णके तिहो वर्णं निज सुखे ॥
'कृष्णवर्णं शब्देर एहं अर्थं परमाण ।
कृष्णा विना तौरसुखे नाहि आहसे आन ॥
केह यदि कहे तांरे कृष्णावरण ।

आर विशेषणे ताहा करे निवारण ॥
देह-कामत्ये हय तेहों अकृष्णावरण ।
अकृष्णावरणे तौर-कहे पीतवरण ॥
जीवेर कलमय तमो नाश करिवारे ।
अङ्ग उपङ्ग-नाम नाना अख धरे ॥
संकीर्तन-प्रवर्त्तके श्रीकृष्ण चैतन्य ।
संकीर्तन-यज्ञे लारे भजे सेहं अन्य ॥
सेहं त सुमेधा, आर कुबुद्धि संसार ।
सर्व यज्ञ हैते 'कृष्णनाम' यज्ञ सार ॥

(चै० च० आ० तृतीय परिच्छेद)

भगवन् पार्षद श्रीजीव गोस्वामीने तत्त्व-संदर्भके
मङ्गलाचरणमें लिखा है—

अन्तः कृष्णं वहिगौर दर्शिताङ्गादि नैमवम् ।
कलौ संकीर्तनाद्यः स्मः कृष्णचैतन्यमाभिसः ॥

अङ्ग और उपङ्ग आदि वैभवसे युक्त जो
भीतरमें अर्थात् स्वरूपतः साज्ञान कृष्ण हैं और
वाहतः गौर-स्वरूपमें प्रकटित हैं, उन कृष्णचैतन्यका
कलियुगमें संकीर्तन आदि भक्तिके अङ्ग पालन द्वारा
में आश्रय लेता हूँ ।

अब हम वेद, उपनिषद, महाभारत, श्रीमङ्गलागवत्,
पुराण, संहिता, तत्र और यामल आदि विभिन्न
शास्त्रोंसे प्रमाण उद्धार कर यह दिखलायेंगे कि श्रीश्री
गौरसुन्दर भगवान हैं—

श्रुतिमें—महान् प्रभुवै पुरुषः सत्त्वस्वैष प्रवर्त्तकः ।
सुनिर्मलाभिमां शान्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः ॥
(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३।१२)

वही पुरुष महान् प्रभु अर्थात् महाप्रभु हैं । वे
महाप्रभु ही बुद्धि वृत्तिके प्रवर्त्तक हैं । उनकी कृपासे
ही सुनिर्मल अर्थात् सर्वादोष विवर्जित नित्य शान्ति
मिलती है । वे ज्योतिर्मय अर्थात् मूर्तिमान होकर
भी अव्यय हैं; साधारण मूर्तिमय पदार्थोंकी तरह
उनका ज्य आदि नहीं है ।

यदा पश्यः पश्यते रुक्मिवर्णं
कर्त्तारमीशं पुरुषं वल्लयोनिम् ।
तदा विहान् पुरुषपापे विपुल
निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥

(मुख्यकोपनिषद् ३।३)

जब सौभाग्यवान व्यक्ति ब्रह्माके भी आदि
कारण जगतकर्त्ता—हेमवर्णके (स्वर्णके समान रंग)
स्वरूपवाले परम पुरुपको प्रत्यक्ष कर लेता है, उस
समय वह पराविद्या लाभकर पाप-पुण्य दोनोंसे
मुक्त और निर्मल होकर सर्वोत्तम समताको
प्राप्त कर लेता है अर्थात् सचिच्चदानन्द शरीरसे
बैकुंठमें गमन करता है ।

महाभारत, अनुशासन पठीके श्रीविष्णुसहस्र-
नाम-स्तोत्रमें हम देख पाते हैं—

सुवर्णवर्णोऽहेमाङ्गो वराङ्गरचन्दनाङ्गदी ।
संन्यासकृच्छ्रमः शान्तो निष्ठा-शान्ति-परायणः ॥
श्रीकृष्णदास कविराजने इस श्लोकका निम्न-
सिखित अर्थ किया है—

कलियुगे युगधर्म-नामेर प्रचार ।
तथि लागि पीतवर्णं चैतन्यावतार ॥
तस्मै हेम-सम-कान्ति प्रकाश शरीर ।
नवमेघ जिनि कंठध्वनि जे गंभीर ॥
देह्यं विश्वते जेहं आपनार हात ।
चारि हस्त हय महापुरुष विलयात ॥
न्यग्रोष परिमद्दल-तनु चैतन्य गुण-धार ॥
शाजानुलम्बित मुज कमल लोचन ।
पिल-फूल-जिनि नासा, सुधांसु वदन ॥

शास्त्र, दान्त, कृष्णभक्ति-निष्ठा-प्रशायण ।
भवत्तवत्सल, सुशील, सर्वभूते सम ॥
चन्दनेर अङ्गद वाला चन्दन भूषण ।
नन्द्यकाले परि करेन कृष्ण संकीर्तन ॥
एह सब गुण जगा मुनि वैश्वन्यायन ।
लहरनामे कैल ताँर नाम गणन ॥
दुर्द जीजा चैतन्येर आदि आर शेष ।
दुर्द जीजा चैतन्येर आरि चारि नाम विशेष ॥

(चै० च० आ० ३ परिच्छेद)

निखिल श्रुति-सार श्रीमद्भागवत और भी कहते हैं—

आसन् वर्णाक्षयो द्वास्य गृह्णतोऽनुयुगं ततुः ।
शुक्रो रक्तस्तथा-पीत इदानीं कृष्णतो गतः ॥

(श्रीमद्भा० १०।८।१३)

अर्थान् गर्भाचार्य कृष्णके नाम-करण संस्कारके समय नन्द महाराजसे कहते हैं—महाराज ! यह जो साँचला-वालक है, यह प्रत्येक युगमें शरीर ग्रहण करता है। पिछले युगोंमें इसने क्रमशः श्वेत, रक्त और पीत (श्रीकृष्णचैतन्य देव कलियुगमें पीत वर्ण धारणकर अवतीर्ण हैं) —ये तीन विभिन्न रंग स्वीकार किये थे। अब ये कृष्णवर्णके हुए हैं। इसलिये इनका नाम कृष्ण है।

बायु पुराणमें भी भगवान्ने कहते हैं—

दिविजा मुनि जायर्थं जायर्थं भक्तरूपिणः ।
कलौ संकीर्तनार्थं भविष्यामि शचोमृतः ।
षष्ठीर्णमास्यो फालगुनस्य फालगुनी-क्षत्त्व-योगतः ।
भविष्ये गौर रूपेण शचीगर्भं पुरन्दरात् ॥

देवगण ! तुमलोग भक्तोंके रूपमें पूज्वी पर जन्म ग्रहण करो। मैं कलिकालमें शचीदेवीके पुत्रके रूपमें आविभूत होकर स्वयं श्रीकृष्ण संकीर्तनका आचरण कर जीवोंसे कृष्ण-संकीर्तन कराऊँगा।

मैं फालगुनी पूर्णिमा तिथिको पूर्णफलगुनी नक्षत्रमें पुरन्दर मिश्र अर्थान् श्रीजगन्नाथ मिश्रके घर शचीदेवीके गर्भसे आविभूत होऊँगा।

और भी—

स्वनन्दी-तीरमास्याय नवद्वीप-जनाज्ञयः ।
तत्र द्विजकुलं प्राप्तो भविष्यामि जनात्मये ॥
भवितयोग-प्रक्षान्ताय लोकस्याजुग्रहाय च ।
संन्यास-रूपमास्याय 'कृष्णचैतन्य' नामधृक् ॥
आनन्दाश्रकलापूर्णः पुलकावलि-विहूलः ।
भवितयोगं प्रदास्यामि हरिकीर्तन- तत्परः ॥

(बायु पुराण)

मैं गंगाके तटपर बसे हुए नवद्वीपमें ब्राह्मण-वाशमें आवतीर्ण होऊँगा। अनन्तर जीवोंको भक्ति प्रदान करनेके लिये संन्यास लेकर 'श्रीकृष्ण चैतन्य' कहलाऊँगा और प्रेमसे विहूल होकर स्वयं दृरिनाम कीर्तन करते-करते सबसे हरिनामका कीर्तन कराऊँगा।

बायु पुराणमें और भी कहते हैं—

कले: प्रथम-सम्भवायां लक्ष्मीकान्तो भविष्यति ।
दारु वशा-समीपस्थः संन्यासी गौर-विग्रहः ॥

कलिके प्रथम चरणमें लक्ष्मीपति नारायण संन्यासी होकर श्रीजगन्नाथ धाममें (पूरीमें) श्रीगौरांगरूपमें विराजमान होगे।

सौर-पुराणमें भगवान् कहते हैं—

स्वर्णा गौरः सुदीर्घाङ्गिल्लोत तीरसंभवः ।
द्रव्यात्मुः कीर्तनग्राही भविष्यामि कलौयुगे ॥

मैं कलियुगमें आजानुलम्बित भुजाओंवाले गौराङ्गके रूपमें गंगाके तट पर आविभूत होकर कृपापूर्वक सबसे हरिनाम संकीर्तन कराऊँगा।

ब्रह्मारदीय पुराणमें भगवान् श्रीमार्कण्डेय मुनिको कहते हैं—

अहमेव द्विजश्चेष्ट नित्यं प्रचल्लिविग्रहः ।
भगवद्वक्त रूपेण लोकान् रक्षामि सर्वदा ॥

हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ! मेरा प्रचल्लन विग्रह नित्य है। अपना रुप छिपाकर भगवद्वक्तके रूपमें लोकोंमें धर्मकी स्वापना कर मैं ही उनकी सर्वदा रक्षा किया करता हूँ।

उपपुराणमें भी श्रीकृष्णने व्यासदेवसे कहा है—

अहमेव कथचिद् ब्रह्मन् संन्यासात्रमसाधितः ।
हरिभवितं प्राहयामि कलौ पापहतान् भरान् ॥
व्यास ! मैं कलियुगमें संन्याण प्रहण कर पापी
जीवोंसे हरिनामका कीर्तन कराऊँगा ।

उद्द-आमनायतंत्रमें हम देख पाते हैं—

मायापुरे महेशानि । (दूर्गे !) बारमें क्षचीसूतः ।
कपिलतंत्रमें भी देखिये—
जस्तु द्वीपे कलौ धोरे मायापुरे द्विजात्मे ।
जनिल्वा पार्वदैः सार्वं कीर्तनं कारिष्यति ॥
श्रीभगवान् कलियुगमें श्रीनवदीप मायापुरमें
ब्रजाञ्चलके घर आविभूत होकर अपने पार्षदोंके साथ
सबसे हरिकीर्तन करायें ।

विष्णुयामलमें भगवान् ने कहा है—

अथवाह घराधामे भूत्वा मद्रक्तरूपधृत् ।
मायायाज्ञ भविष्यामि कलौ संकीर्तनामगमे ॥
मैं भगवान् होकर भी भक्त भाव प्रहण कर हरि-
संकीर्तनका प्रवर्तन करनेके लिये मायापुरमें आविभूत
होऊँगा ।

अनन्त-संहितामें भी भगवान् ने भविष्यत् बाणी
की है—

अवतीर्णे भविष्यामि कलौ निवायैः सह ।
शचीमभे नवद्वीपे स्वधुर्नी परिवर्तिते ॥
मैं कलियुगमें अपने पार्वद भक्तोंको साथ
लेकर गंगाके टटस्थित नवदीपमें शचीदेवीके गर्भमें
आविभूत होऊँगा ।

अनन्त संहिताके दूसरे अंशके दूसरे अध्यायमें
पाठीती देवीके प्रश्नोंके उत्तरमें श्रीमहादेव यह बतला
रहे हैं कि श्रीकृष्णचैतन्य कौन है ?

यस्यास्ति भक्तिवृत्तराज् पुणे
श्रीराधिकायाज्ञ हरे: समायाम् ।
यस्यास्ति चैतन्य-कथाधिकारो
हरेभक्तस्य न वै कदाचित् ॥

देवि ! ब्रजराज-तनय श्रीकृष्णके और कृष्णके
समान श्रीमती राधिकाके प्रति जिनकी भक्ति है,
केवल उनका ही श्रीकृष्णचैतन्यकी कथाओंका अवण
करने का अधिकार है ।

य आदिदेवोऽखिल लोकलाशो
यहमादिदं सर्वमभूत् परात्मा ।
ज्ञयं पुनर्यास्यति यत्र चान्ते
तं हृष्णचैतन्यमवेदि कान्ते ॥

हे दूर्गे ! जो आदिदेव हैं, अखिल लोकोंके
स्वामी हैं, परमात्मा हैं और जिनसे सम्पूर्ण जगन्
उत्पन्न है और जिनमें सबकुछ लय हो जाता है,
वे परम पुरुष ही श्रीकृष्णचैतन्य हैं ।

ब्रह्मसि यं वेदचिदो विद्वन्ति
विद्वौसमाद्य खलु केचिदाहुः ।
इंशं तथान्ये जगदेकनाथं
पश्यन्ति केचित् पुरुषोत्तमङ्ग ॥

य एव भगवान् कृष्णो राधिकाप्रायावल्लभः ।
स्वद्यादौ स जगद्वायो गौर श्रीगौरमहेश्वरि ॥
परात्मने नमस्तस्मै सर्वकारणहेतवे ।
आदिदेवाय गौराय सच्चिदानन्दरूपिण्ये ॥

पाठीती ! वेदज्ञ पुरुषगण जिनको ब्रह्म कहते
हैं, कोई-कोई जिनको आदि विद्वान् कहते हैं, दूसरे
जिनको सम्पूर्ण जगन्के स्वामी इंश्वरके रूपमें देखते
हैं, कोई-कोई जिनको पुरुषोत्तमके रूपमें जानते हैं,
जो श्रीमती राधिकाके प्राण-बलभ भगवान् श्रीकृष्ण
हैं, वे ही जगदीश्वर श्रीगौरसुन्दर हैं । उन सर्वकारण-
कारण आदिदेव सच्चिदानन्द-स्वरूप परमात्मा
श्रीगौराङ्गदेवको नमस्कार करता हूँ ।

अथवावेदके अन्तर्गत श्रीचैतन्य-उपनिषदमें भी
श्रीगौराङ्गदेवके अवतारका वर्णन पाया जाता है—

“पिलादो ब्रजाञ्चलमाह—भगवान्, कलौ पापा-
च्छ्रान्ना: प्रजाः कथं मुच्येन् ? को वा देवता ? को
या मांत्रो ब्रुहि ।

स (ब्रह्मा) होवाच—हस्यं ते यदिष्यामि,
जाह्नवीतीरे नवद्वीपे गोलोकात्मये धाम्नि गोविन्दो
दिभुजो गौरः सर्वात्मा महापुरुषो महात्मा महायोगी
त्रिगुणातीतः सत्त्वरूपो भक्तिं लोके काश्यति ।
तदेते श्लोका भवति—

एको देवः सर्वहपि महात्मा
गौरो रवत्-श्यामल-श्वेतकृपः ।
चैतन्यात्मा स दै चैतन्यशक्ति-
भक्तिकारो भक्तिकृष्ण भक्तिवेदः ॥
समो वेदान्तवेदाय कृष्णाय परमात्मने ।
सर्वचैतन्यस्वरूपाय चैतन्याय नमो नमः ॥
वेदान्तवेदः पुरुषं पुराणं
चैतन्यात्मानं विश्वयोर्मि महान्तम् ।
तमेव विश्वाऽतिसूख्यमेति
नाम्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

स एव मूलमंत्रं जपति हरिरिति कृष्ण इति राम
इति । मन्त्रो गुह्यः परमो भक्तिवेदः ॥

नमान्यष्टावष्ट च शोभनानि, तानि नित्यये
जपन्ति धीरास्ते वै मायाभितिरन्ति नान्यः । परमं
मंत्रं परम रहस्यं नित्यमावर्त्तयति ।

चैतन्य एव सङ्कृप्तयो वासुदेवः परमेष्ठो रुद्रः
शक्तो वृहस्पतिः सर्वे देवाः सर्वांगि भूतानि स्थाय-
राणि चराणि च यत्किञ्चित् सदसत् कारणं
सर्वम् । तदत्र श्लोकाः—

यत्किञ्चिद्वस्त्रङ् उते वरं सत् कार्यमुच्यते ।
सत् कारणो परं जीवस्तदशर मितीरितम् ॥
चराचराभ्यां परमः स एव पुरुषोत्तमः ।
चैतन्याख्यं परं तत्त्वं सर्वकारण्यकारणम् ॥

व एने रसयति भजति प्यायति स पापानं तरति,
स पूता भवति, स तत्त्वं जनाति, स तरति शोकम्
गतिस्तस्यान्ते नान्यस्येति ॥”

अर्थात्—

पिप्पलादने अपने पिता ब्रह्मासे जिज्ञासा की—
‘प्रभो ! कलियुगमें पापके भीषण बोझसे दबी हुई
प्रजाओंका उद्धार कैसे होगा ? कलियुगके उपास्य
देवता कौन है ? और उस समयका भजन-मंत्र कौन
सा है ?—कृपया बतलाईए ।’

ब्रह्माने उत्तर दिया—‘यह परम गोपनीय तत्त्व
है, मैं तुम्हें बतला रहा हूँ, सावधानीसे सुनो ।

सबके आत्मान्बृहप, परमपुरुष, परमात्मा, महा-
योगी, त्रिगुणोंसे परे, विशुद्ध सत्त्वमय, द्विमुज
श्यामसुन्दर स्वयं गंगाके तट-स्थित गोलोक नामक
नवद्वीप धाममें गौर-सुन्दरके रूपमें अवतीर्ण होकर
जगत्‌में भक्तिका प्रकाश करेंगे ।

परम पुरुष गौरचन्द्र ही एक मात्र परम देवता
और सर्वान्धोंहैं । वे दूसरे युगोंमें श्वेत, रक्त और
श्यामले रूप धारण करते हैं । वे चैतन्य-स्वरूप,
चिन्मूलवितमान्, भक्तल्पी, भक्तिदाता और भक्ति-
वेद हैं ।

वे वेदान्तवेद्य साक्षात् कृष्ण परमात्मा सर्व-
चैतन्यस्वरूप श्रीचैतन्यदेवको वार-वार नमस्कार है ।

वेदान्तवेद्य पुराण-पुरुष, चैतन्य-विप्रह, विश्वके
कारण और महान्त स्वरूप एक मात्र चैतन्यदेवको
जानलेने पर सुन्युसे अर्तीत हुआ जा सकता है ।
मायाको अतिक्रम करनेका दूसरा कोई उपाय
नहीं है ।

वे (श्रीचैतन्यदेव) स्वयं ‘हरि-कृष्ण-राम’
अर्थात् ‘हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण
हरे हरे । हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे—
इस मंत्रका कीर्तन करते हैं । यह महामंत्र ही सर्व-
मंत्रोंका सार, सर्वश्रेष्ठ और भक्तिवेद है ।

आठ और आठ सोलह नामोंका यह महामंत्र परम
सुन्दर हैं, जो लोग इस महामंत्रका कीर्तन करते हैं,
वे बुद्धिमान पुरुष मायाको पार कर जाते हैं, दूसरे
नहीं । नित्यसिद्ध पुरुष भी इस परम सार महामंत्र
का निरन्तर कीर्तन करते हैं ।

श्रीचैतन्यदेव ही संकरण हैं, वे ही वासुदेव हैं;
उनसे ही ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, वृहस्पति, समस्त देवता,
चराचर जीव और नित्यानित्य समस्त वस्तुएँ उत्पन्न
हुई हैं । वे सर्वकारण-कारण हैं । इसलिये इस
विषयमें ये श्लोक प्रसिद्ध है ।

जो कुछ अनित्य कार्यरूपी और भोग्य है, वह
अर्थात् यह जगत् ‘ज्ञान’ कहलाता है ।

जीव सत् अर्थात् नित्य है। कारण वस्तु जरसे श्रेष्ठ है और 'अचर' कहलाती है।

जो जर और अचर दोनोंसे भी श्रेष्ठ हैं, वे 'पुरुषो-तम' कहलाते हैं। उन समस्त कारणोंके भी मूल-कारण परतस्वका नाम ही—श्रीचैतन्यदेव है।

जो श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुसे प्रीति करते हैं, उनकी सेवा करते हैं, उनका ध्यान करते हैं, वे अनर्थ अर्थात्

मायासे मुक्त हो जाते हैं, परिव्र वर्त हो जाते हैं, जान लेते हैं, शोकसे अतीत हो जाते हैं तथा परम-गतिको प्राप्त होते हैं। जो लोग सर्वसद्गतिरूप श्रीचैतन्यके विमुख होते हैं, उनकी कोई गति नहीं होती।

(क्रमशः)

—त्रिदिविड स्वामी श्रीमद्भित्तमयूख भागवत महाराज

—*—

श्रीश्रीव्यास-पूजाका आह्वान

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुंचुड़ा [हुगली] प० बंगाल

३० दिसम्बर १९५८

प्रिय महानुभाव,

श्रीश्रीव्यासाभिन्न जगद्गुरु ऊँ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्री श्रीमद्भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामी महाराज की आविभवि-तिथि-पूजाके उपलक्ष्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके उद्योगसे उपरोक्त ठिकाने पर आगामी १४ फाल्गुन, २६ फरवरी, वृहस्पतिवारसे १६ फाल्गुन, २८ फरवरी, शनिवार तक तीन दिन श्रीश्रीव्यासपूजा और उसके अन्तर्गत पूजापंचक अर्थात् श्रीकृष्ण-पंचक, व्यास-पंचक, मध्यवादि आचार्य पंचक, सनकादि पंचक, श्रीगुरुपंचक और तत्त्व-पंचककी पूजा एवं होम आदिका विराट अनुष्ठान होगा। प्रतिदिन हरि-संकीर्तन, प्रवचन, भाषण, अज्ञालि-प्रदान आदि इस महोत्सवके प्रधान अंग हैं।

प्रार्थना है, आप धर्म-प्राण सज्जन महोदयगण अपने इष्ट मित्रों तथा बन्धुजनोंके साथ पदार कर समितिके सदस्योंको परमानन्दित और उत्साहित करते हुए भक्ति-उन्मुखी सुहृति अर्जन करें।

निवेदक—

श्रीगौड़ीय-वेदान्त-समितिके सभ्यवृन्द

श्रीचैतन्य महाप्रभु

[गतांक से आगे]

शोभा से युक्त था वितान चरका लाखों लगी भालरें ।
मोती मानिक लाल नीलमलि की छाई सभी भालरें ॥
प्यारी विष्णु प्रिया शची सुत लसा मानों रती काम थे ।
कैदों राम रमा, किती शिव डमा, राधा पती श्याम थे ॥ ३४ ॥

वेदोक्त विधि से विवाह प्रभु का गोधृजि में हो गया ।
साजी यो सुखपाल लाल यश भी चारों दिशा छा गया ॥
आये गेह सुहात साथ गृहिणी आहं सभी नारियों ।
माती धीं सब कामिनी सृग दगी गाती बजाती तियाँ ॥ ३५ ॥

बीते दौस अनेक एक दिन वे जाने लगे धाम से ।
नाना बादु विवाद कान पढ़ते हँथ्या पगे नाम से ॥
कानों से सुनता सुजान नर जो निन्दा भगवान की ।
गोवाती बनका तुश्नि जग में चाणी थही बझ की ॥ ३६ ॥

छोड़ा सोच विचार धाम अपना आये गया धाम को ।
तारे थे सब पूर्व जात अपने गाने लगे नाम को ॥
सोचा था अब जाय धाम मधुरा श्रीकृष्ण जन्मे जहाँ ।
वाची देव विरोधिनी सुन प्रभु नाहीं गये थे वहाँ ॥ ३७ ॥

आये लौट विदेह नेह वस हो हा कृष्ण ! कहते हुए ।
पाला सा पह जाय पाथ सुत दै यों साप सहते हुए ॥
श्री राधा पति श्याम नाम जपते गाने लगे गान को ।
हृषे ये रस सिन्धु में निरत हो पीते सुधा पान को ॥ ३८ ॥

दोहा

ऐसे ही होता रहा, नित नित नेह नवीन ।
कृष्ण नाम रस सिन्धु में, हुए निमाहे लीन ॥ ३९ ॥

(कमशः)

—श्रीशंकरलाल चतुर्वेदी, एम० ए०, साहित्यरत्न ।

जैव-धर्म

[गतीक से आगे]

बाबाजी—‘पद्मपुराण (उत्तर खण्ड ४२ अ०, १०३ श्लोकमें तथा नारदपंचरात्र ४२२-२३) में लिखते हैं—

‘स्मर्त्यः सततं विष्णुविंश्मर्त्यो न जातुचित् ।
सर्वे विधि-निषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्करा ॥ (क)

‘हे भगवान् विष्णुको जीवन भर सर्वदा स्मरण रखो—यही मूल विधि है; जीवके जीवन-निर्वाहके लिये वर्णांश्रमादि व्यवस्थाएँ इसी विधिके अधीन हैं। भगवान्को कभी न भूलो—यही मूल निषेध है। पाप और बहिर्गुरुता-वर्जन तथा पापोंके प्रायशिच्छा, ये सभी इसी मूल निषेध-विधिके अनुगत हैं। अतएव शास्त्रोक्त समस्त विधि और निषेध भगवत् स्मरण-विधि और विस्मरण निषेधके चिर किंकर हैं। इससे यह समझना होगा कि वर्णांश्रमादि समस्त प्रकारकी विधियोंमें भगवत् स्मरण-विधि ही नित्य है।

‘सुख-वाहूरु-पादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह ।
चत्वारो बज्जिरे वर्णां गुणेविप्रादयः पृथक् ॥

ये एवं पुरुषं साहादारम-प्रभवमीश्वरम् ।
न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद् अष्टः पतन्त्यधः ॥ (ख)
(भा० १११४।२-३)

ब्रजनाथ—‘वर्णांश्रम की विधियोंका पालन करने वाले सभी लोग कृष्ण-भक्तिका साधन क्यों नहीं करते ?

बाबाजी—“श्रीहप गोस्वामीने कहा है—‘शास्त्र-विधियोंका पालन करनेवालोंके बीच जिन लोगोंकी भक्तिके प्रति अद्वा उत्पन्न होती है, केवल उनका ही भक्तिमें अधिकार होता है। वैसे लोगोंकी वैद्य-जीव-तके प्रति आसक्ति नहीं होती। वे वैराग्य भी नहीं करते। जीविका निर्वाहके लिये सांसारिक विधियोंका पालन करते हैं और अद्वालु होकर शुद्ध-भक्तिके साधनमें प्रवृत्त होते हैं।’ अनेक जन्मोंकी सुकृतिके कल-स्वरूप ही वैद्य-जीवोंमें ऐसा अधिकार उदित होता है। अद्वावान् भक्त्यधिकारी तीन प्रकारके होते हैं—उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ !’

ब्रजनाथ—‘श्रीगीतामें ऐसा कहा गया है कि

(क) विष्णुको सर्वदा स्मरण रखो, उन्हें कभी न भूलो—दूसरे-दूसरे समस्त विधि-निषेध इन दोनोंके ही अनुगत हैं। तत्पर्य यह कि शास्त्रोंमें जिसनो प्रकारकी विधियोंकी व्यवस्था है तथा निषेधका निर्धारण है, वे समस्त उक्त दो मूल विधि और निषेध दोषोंके आधार पर ही प्रतिष्ठित हैं। जिससे भगवान्का सतत स्मरण होता रहे, उसे कत्तव्य माना गया है; यही विधि है। और जिससे भगवान्का विस्मरण हो जाय, वैसे कार्य ही ‘निषेध’ है।

(असृतप्रवाह भाष्य)

(ख) आदि पुरुष विष्णुके सुखसे ब्रह्मण, सुजाओंसे ज्ञान, जौओंसे वैश्य और चरणोंसे शूद्र—ये चारों वर्ण अलग-अलग आश्रमोंके साथ और अपने वर्णगत गुणोंके सहित पैदा हुए हैं। इसलिये इन चार वर्ण और आश्रममें रहनेवाला जो मनुष्य अपने प्रभु भगवान् विष्णुका भजन नहीं करता है, वलिक उक्ता अपने वर्ण और आश्रमके अहंकारमें मत्त होकर उनका अनादर करता है, वह अपने स्थान, वर्ण, आश्रम और मनुष्य-योनिसे भी उत्तुत हो जाता है। उसका अध्ययन तो जाता है।

आत्म, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—ये चार प्रकार-
के लोग भजन करते हैं; वे किस भक्ति के अधिकारी
हैं?

बाबाजी-‘आर्ति, जिज्ञासा, अर्थार्थिता और

ज्ञान-ये चारों जब साधु-संगके प्रभावसे दूर हो जाते हैं और अनन्या-भक्तिमें श्रद्धा उत्पन्न होती है, उसी समय वे भक्तिके अधिकारी होते हैं। गजेन्द्र(क) शीनकादि महर्षि गण(त्र), ध्रुव (ग) और

(क) गजेन्द्र—यात चौथे मन्वन्तरकी है। पर्वतराज श्रिकुटकी तराईके घोर जंगलमें बहुत सी हथिनियोंके साथ एक गजेन्द्र निवास करता था। वह बड़े बड़े बलवान हाथियोंका सरदार था। पर्वतकी लकड़ीमें एक सुबहत और रमणीय सरोवर था। एक दिन गजेन्द्र उस सरोवरमें साथको हथिनियों और बदचों के साथ निर्भय होकर कीढ़ीमें मच्छर था। उसी समय अकस्मात् एक बलवान ग्राहने कीधरमें भर कर उसका पैर पकड़ लिया। बलवान गजेन्द्रने भी अपनी शक्तिके अनुसार अपनेको छुड़ानेकी बड़ी चेष्टा की। एक हवार वर्ष बीत गये उन दोनोंको लड़ते-लड़ते। परन्तु गजेन्द्र अपनेको छुड़ा न सका। धीरे धीरे गजेन्द्र शिथिल पद्धने लगा। अब वह अपनी इच्छाका कोई दूसरा उपाय न देख कर धीमगाढ़ान्नकी अनन्य शरणमें आया और आर्ह होकर उनको एकारने लगा। चक्रधारी भगवान् गहुङ पर सवार होकर उसी समय वहाँ उपस्थित हुए और चक्रसे ग्राहका मुँह काढकर गजेन्द्रको छुड़ा लिया। गजेन्द्र पूर्व जन्ममें द्विविद देवका पापक्लवंशी राजा था। उसका नाम इन्द्रघ्युमन था। एक समय वह इवानमग्न होकर पूजा कर रहा था। उसी समय महिंद्रि अगस्त वहाँ पधरे। परन्तु राजा ने इवानमें होनेके कारण उनका सल्कार न किया। हस पर महिंद्रि अगस्त कोध में भर कर राजा को हाथी-योनि प्राप्त करनेका शाप दे डाला। यह संक्षित-चेतन और आत्मका डालाहरण है।

(ज) शौनकादि—एक बार शौनकादि ऋषियोंने चरम-कल्याण प्राप्तिको आशासे श्रीहरितीर्थ नेमिपारश्वमें एक हजार वर्ष तक याग-यज्ञ आदिके अनुष्ठान किये। परन्तु उससे अपने अनीष्ट पूर्तिको कोई आशा न देख कर उन्होंने श्रीकृष्णद्वायाम वेदव्यासके अत्यन्त विषय शिष्य श्रीसूत गोस्वामीके निकट वृः प्रश्न किये और अपने प्रश्नोंके उत्तर प्राप्त कर यथार्थ सिद्धिको प्राप्त हुए। वे वृः प्रश्न ये हैं—(१) प्राणियोंका परम कल्याण क्या है? (२) आत्मा-आत्मोंके आत्मा परमात्मा श्रीहरि जिससे प्रसन्न हों, वह अवश्योग विषय क्या है? (३) वासुदेव श्रीकृष्ण भगवान् देवकीके गर्भसे क्या-क्या करनेकी इच्छासे अवशीर्ण हुए थे? (४) भगवान् वासुदेवने किन-किन अवसारोंमें कौन-कौनसी लोकादृ की थीं? (५) श्रीहरिके गुणोंका लक्षण उनकी महिमाका लक्षण कोजिए। (६) श्रीकृष्णके स्वधाम गमन करने पर घर्मने किनका आश्रय लिया था? ब्राह्मण कुलमें पैदा होकर भी वे ऋषिगण ब्राह्मणेतर कुलमें उत्पन्न श्रीश्रीसूत गोस्वामीको गुहके रूपमें वरण कर उनके निकट सरल भावसे 'जिज्ञासु' हुए थे। श्रीव्यासदेवके अदिशय प्रियपात्र श्रीसूत गोस्वामी ने वडे स्नेहसे उनके प्रश्नोंके उत्तर दिये थे, जिसे सुनकर वे परम सिद्धिको प्राप्त हुए थे। जिज्ञासु भक्तका यही उदाहरण है।

(ग) भ्रुव—बात सृष्टिके प्रारम्भकी है। स्वार्थभूत मनुके वंशमें उत्पन्न सच्चाट् उत्तरनपाइकी दो रानियाँ थीं। अद्विका नाम सुनीति और छोटी का नाम सुरुचि था। राजा छोटी रानीके बश हो रहे थे। सुनीतिके पुत्र भ्रुव हुए। विसाताके अस्याचारोंसे बालक भ्रुव पितृस्तेहसे वंचित होकर राज्य-प्राप्तिकी आशासे मात्राके उपदेशानुसार गम्भीर बनमें जाकर पश्चपलासलोचन श्रीहरिकी आराधनामें तन्मय हो गये। बड़ी कठोर आराधना भी। परन्तु यह कठोर आराधना थी—राज्य-प्राप्तिरूप अर्थके लिये—परमार्थके लिये नहीं। श्रीनारदजीकी कृपासे वे भगवद्-नुग्रह प्राप्त हुए। भगवान्‌की कृपासे उनकी राज्य-प्राप्तिकी आकांक्षा भी दूर हो गयी और उन्होंने भक्ति पायी थी। परिव वर प्राप्तिकी आशासे अर्थार्थी होकर अनन्य मनसे भगवान्‌का भजन करनेसे अन्तमें लित्य-मंगलकी प्राप्ति होती है—भ्रुव हस्ते उदाहरण हैं।

चारोंकुमार (क) इसके उदाहरण स्थल हैं।

ब्रजनाथ—‘क्या भक्तजनोंकी मुक्ति नहीं होती ?’

बाबा—‘सालोक्य, सार्थि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य—इन पाँच प्रकारकी मुक्तियोंमें सायुज्यमुक्ति भक्ति-तत्त्वकी नितान्त विरोधिनी है। अतएव भगवद्भक्त इसे कदापि स्वीकार नहीं करते। सालोक्य, सार्थि, सामीप्य और सारूप्य—ये चार मुक्तियाँ पूर्ण भक्ति-विरोधी न होने पर भी आंशिकरूपमें इनमें भक्ति-प्रतिकूलता है। कृष्णभक्त नारायण-धामगत इन चारों मुक्तियोंको भी कदापि ग्रहण नहीं करते। ये मुक्तियाँ कहीं-कहीं सुख-ऐश्वर्य प्रदान करती हैं और कहीं-कहीं चरमावस्थामें प्रेम सेवाकी ओर अप्रसर करती हैं। जहाँ सुख-ऐश्वर्य ही उनका चरम फल होता है, वहाँ वे भक्तजनोंके लिये त्याज्य हैं। मुक्तियोंकी बात तो अलग रहे, नारायणका प्रसाद भी श्रीकृष्णके अनन्य भक्तोंके चित्तको लुभा नहीं सकता। क्योंकि श्रीनारायण और श्रीकृष्ण स्वरूपमें सिद्धान्तकी दृष्टिसे कोई भेद न होने पर भी इसकी दृष्टिसे श्रीकृष्णरूपका उत्कर्ष नित्यसिद्ध है।

ब्रजनाथ—‘क्या आर्यकुलमें पैदा होकर वर्णा-अमर्धर्मको विधियोंका पालन करने वाले व्यक्ति दी भक्तिके अधिकारी हैं ?’

बाबाजी—‘भक्तिमें मनुष्यमात्रको अधिकार प्राप्त करनेकी योग्यता है।’

ब्रजनाथ—‘यदि ऐसी बात है, तब वर्णाभर्ममें स्थित व्यक्तियोंके दो कर्त्तव्य दीख पड़ते हैं—एक वर्णाभर्मकी विधयोंका पालन करना, और दूसरा शुद्धभक्ति-धर्मका पालन करना। परन्तु वर्णाभर्म-

(ग) चारों कुमार—सनक, सनातन और सनक्तुमार ये चारों कुमार हैं। सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माने ध्यानभग्न होकर इनकी मानस सृष्टिकी थी। इसीसे ये ब्रह्माके मानस-पुत्र कहलाते हैं। चारों कुमार अत्यन्त ज्ञानके प्रभावसे संसार-आसक्तिसे सर्वथा परे थे। वे अपने पिता ब्रह्माके सृष्टि-कार्योंमें सहायक न होकर ब्रह्मज्ञानकी ओर झुक पड़े। इससे ब्रह्माको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने चारोंकुमारोंके कल्याणके लिये भगवान् श्रीहरिके निकट प्रार्थना की। ब्रह्माकी प्रार्थनासे भगवान् हंसरूपमें अवतीर्ण होकर चारोंकुमारोंके चित्तको शुद्ध अद्वैत-ज्ञानसे हृदा कर भक्ति-तत्त्व-ज्ञानकी ओर लगा दिया। इसीलिये शनकादि ऋषियोंको ज्ञानी-भक्त कहा जाता है। ये ही निम्बाके सम्प्रदायके आदि प्रवक्ता हैं।

के वहिभूत व्यक्तियोंका केवल एक ही कर्त्तव्य है—भक्तिके अंगोंका पालन करना। ऐसी दशामें वर्णा-अमर्धर्ममें स्थित व्यक्तियोंको अधिक कष्ट भेलने पड़ते हैं; क्योंकि उन्हें कर्माङ्ग और भक्त्यङ्ग—दोनोंका पालन करना पड़ता है। ऐसा क्यों ?

बाबाजी—‘शुद्धभक्त्यधिकारी व्यक्ति वर्णाभर्म धर्ममें स्थित होने पर भी केवल भक्त्यङ्ग पालन करने के लिये वाध्य है। भक्त्यङ्गका पालन करनेसे कर्माङ्ग का पालन आप हो जाता है। जहाँ कर्माङ्ग भक्तिसे स्वतन्त्र है अथवा भक्ति विरोधी है, वहाँ पर कर्माङ्ग-का पालन नहीं करनेसे कोई दोष नहीं होता। भक्ति-अधिकारीको अकर्म और विकर्ममें स्वभावसे ही रुचि नहीं होती। परन्तु यदि दैववश कोई पापकर्म हो भी जाय, तो उसे प्रायरिचतके रूपमें कर्माङ्गोंके अनुष्ठानकी कोई आवश्यकता नहीं होती। जिनके हृदयमें भक्ति है, उनसे संयोगवश कोई पापकर्म बन जाने पर भी वह पाप उनके हृदयमें स्थिर नहीं होता, रीत ही कानायाम विनष्ट हो जाता है। इसलिये उन्हें प्रायरिचतकी कोई आवश्यकता नहीं होती।

ब्रजनाथ—भक्त्यधिकारी पुरुष देवऋण आदिसे हैंसे उत्थण हो सकते हैं ?

बाबाजी—‘श्रीमद्भागवतमें ऐसा कहा गया है कि भगवान्के शरणागत व्यक्ति किसीके भी चूणी नहीं होते—

देवपिं-भूतास नृणां
न किङ्करौ नायमृणी च राजन ।

सर्वात्मना यः शरणं शरणं
गतो मुकुन्दं परिहृष्य कर्त्तम् ॥ (क)
(श्रीमद्भागवत ११।१।४१)

समस्त गीताका चरम (१८।६६) तात्पर्य यह है कि जो समस्त धर्मोंका भरोसा छोड़कर भगवानके शरणागत होते हैं, भगवान् उन्हें समस्त पापोंसे मुक्त कर देते हैं। गीताका तात्पर्य यह है कि जब अनन्य भक्तिके प्रति अधिकार पैदा हो जाता है, तब वह अधिकारी अ्यक्ति ज्ञान-शास्त्र और कर्म-शास्त्रकी विधियोंका पालन करनेके लिये बाध्य नहीं होता। केवल भक्तिके अनुशीलनसे ही उसकी सर्वसिद्धि हो जाती है। अतएव, 'न मे भक्तः प्राणश्चयति' (१०।६।२१)—भगवान्की इस प्रतिज्ञाको ही सर्वोपरि समझना।'

इतना सुनकर ब्रजनाथ और विजयकुमार दोनों एक साथ बोले—'हमारे हृदयमें भक्तिके सम्बन्धमें और किसी प्रकारका सन्देह नहीं है। हमारी समझमें यह बात आ गयी है कि ज्ञान और कर्म अत्यन्त तुच्छ हैं; भक्तिदेवीकी कृपा बिना जीवका किसी प्रकार भी मंगल नहीं हो सकता है। प्रमो ! कृपा कर शुद्धभक्तिके अंगोंको बतलाइए, जिससे हमलोग कृतार्थ हो सकें।'

बाबाजी—'ब्रजनाथ ! तुमने श्रीदशमूलके आठवें श्लोक तक्का श्रवण किया है; तुम उसे समय के अनुसार अपने मामाजीको सुनाना। तुम्हारे मामाजीको देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। इस समय नवाँ श्लोक सुनो—

श्रुतिः कृष्णाश्चयानं स्मरण्य-नन्ति-पूजा-विधिगणाः।
तथा दास्यं सद्यं परिचरणमप्यात्मददनम्।
नवाङ्गन्येतानीह विधिगतः - भक्तेऽरुदिनं
भजन् श्रद्धायुक्तः सुविमल-रति वै स लभते ॥

(नव० ४८मूल)

(क) जो सब प्रकारसे शरणागतवत्सक्त भगवान् मुकुन्दकी शरणमें आ गया है, वह देवताओं, पितरों, प्राणियों, कुदुम्बियों और अतिथियोंके शरणसे उत्तरण हो जाता है; वह किसीके अधीन या किसीका सेवक नहीं रहता।

अथर्वन श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, बन्दन, पद-सेवा, अर्चन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन—इस नवथा वैधी भक्तिका जो लोग अद्वापूर्वक प्रतिदिन अनुशीलन करते हैं, वे विमल कृष्ण-रति प्राप्त होते हैं।

श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण और लीला सम्बन्धी अप्राकृत वर्णन आदिका कर्णेन्द्रिय से स्पर्शका नाम—'श्रवण' है। श्रवणकी दो अवस्थाएँ होती हैं—श्रद्धा उत्पन्न होनेके पहले साधुजनके निकट जो कृष्णके गुणानुवादका श्रवण किया जाता है, वह एक प्रकार का श्रवण है। उस श्रवणसे श्रद्धा उदित होती है, श्रद्धा उत्पन्न होने पर प्रगाढ़ उकंठाके साथ कृष्ण-नामादि श्रवण करनेकी प्रवृत्ति होती है। तदनन्तर गुरु वैष्णवोंके निकट जो कृष्ण-नामादि सुना जाता है, उसीका नाम है—द्वितीय श्रवण। श्रवण—शुद्धभक्ति का ही एक अंग है। साधनकालमें गुरु-वैष्णवोंके निकट श्रवण करते-करते सिद्ध कालका श्रवण उदित होता है; श्रवण भक्तिका पहला अंग है।

भगवन्नाम, रूप, गुण और लीला सम्बन्धी शब्दोंका जिह्वा से स्पर्शका नाम कीर्त्तन है। कृष्ण-कथा और कृष्णनामादिका वर्णन, शास्त्र-पाठ कर दूसरेको सुनाना, गीत द्वारा लोगोंको कृष्णके प्रति आकर्षण करना तथा हैन्योक्ति, विज्ञापि, भृत्यपाठ, और प्रार्थना आदि—ये सब कीर्त्तनके भेद हैं। नवधा-भक्तिमें कीर्त्तनको सर्वब्रेष्ट अंग बतलाया गया है; विशेषतः कलियुगमें कीर्त्तन ही सबका कल्याण करनेमें समर्थ है—ऐसा समस्त शास्त्रोंमें कहा गया है। पद्मापुराण (उत्तरदास्त्र अ० ४८, श्लोक २५) में कहते हैं—

ध्यायन् कृते वजन यज्ञे खेताया द्वापरेऽर्थयत् ।

यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥

(क्रमशः)

* श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः *

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

सादर सम्मानणपूर्वक निवेदन—

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ

लेखरिपाडा, पो० बबूप,

(नदीया)

कलियुग-पावनाधतारी स्वयं भगवान् श्रीश्रीशचीनन्दन गौरहरि की निखिल पावन-मङ्गलमयी आविभवि तिथि-पूजा (फाल्गुनी पूर्णिमा) के उपलक्ष्य में श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति के उद्योग से उपरोक्त ठिकाने पर आगामी ५ चैत्र, १६ मार्च, बृहस्पति वार से ११ चैत्र २५ मार्च बुधवार पर्यन्त सप्ताहकालव्यापी एक विराट महोत्सव का अनुष्ठान होगा। इस महदनुष्ठानमें प्रतिदिन प्रवचन, कीर्तन, वक्तृता, इष्टनोष्ठी, श्रीविप्रहसेवा, महाप्रसाद वितरण प्रभृति विविध भवन्यज्ञ आजित होंगे।

इस उपलक्ष्य में श्रीश्रीनवद्वीपधाम के अन्तर्गत नौ द्वीपों का दर्शन तथा तत्त्वस्थान-माहात्म्य-कीर्तन एवं नगर संकीर्तन करते हुए सोलह-क्रोस की परिक्रमा होगी। गत वर्ष की तरह इस वर्ष भी श्रीनृसिंहपल्ली, चाँपाहाटी, मामगाढ़ी एवं श्रीधाम मायापुरमें शिविरादि में वास कर निशि-याप्तपूर्वक परिक्रमा करने की सुन्दरस्था की गई है।

धर्मप्राण सज्जन-कुन्द उक्त भक्ति-अनुष्ठान में सवान्धव योगदान कर समिति के सदस्यवर्ग को परमानन्दित एवं उत्साहित करेंगे। इस महदनुष्ठान का शुरुत्य उपलक्ष्य कर प्राण, समर्थ बुद्धि और वाक्य द्वारा समिति के सेवाकार्य में सहानुभूति प्रदर्शन कर अनुगृहीत करेंगे। इति १ फरवरी, १९५६

शुद्धभक्त-कृपालेश-प्रार्थी—

“सभ्यवृन्द”

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति।

दृष्टव्य—विशेष विवरणके लिये अथवा साहाय्य (दामादि) देनेके लिये त्रिदिग्दिस्वामी श्री-मङ्गलकिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज के निकट उपर्युक्त ठिकाने अथवा श्रीउद्घारण गौड़ीय मठ, चौमाथा चिनसुरा (हुगली) के ठिकाने पर लिखें या मेंजें।